नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 115 • वर्ष 9 अंक 12
जनवरी 2008 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

गुजरात में मोदी की जीत से निकले सबक

चुनावी जोड़-तोड़ से साम्प्रदायिक फासीवाद को नहीं हराया जा सकता

मेहनतकश अवाम की गोलबन्दी और क्रान्तिकारी जनसंघर्ष ही एकमात्र रास्ता

सम्पादक

वर्ष 2002 के बाद गुजरात विधानसभा के चुनावों में भी नरेन्द्र मोदी की जीत ने इस सचाई को फिर से उजागर किया है कि गुजरात के समाज में साम्प्रदायिक बँटवारा किन ख़तरनाक हदों तक हो चुका है। चुनाव नतीजों ने यह भी बिल्कुल साफ़ तौर पर उजागर कर दिया है कि तथाकथित धर्मनिरपेक्ष ताक़तों के चुनावी जोड़-तोड़ के सहारे साम्प्रदायिक फ़ासीवाद को फ़ैसलाकुन शिकस्त कत्तई नहीं दी जा सकती। चुनाव नतीजों ने नकारात्मक रूप से इतिहास के इस सबक की एक बार फिर शिद्दत से याद दिलायी है कि केवल मेहनतकश अवाम की वर्गीय गोलबन्दी और उसकी धुरी पर कायम जनवादी एवं धर्मनिरपेक्ष ताक़तों का क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चा ही फ़ासीवाद के भस्मासुर का वध कर सकता है।

तथाकथित लोकतंत्र की सीढ़ियाँ चढ़कर गुजरात के हिटलर नरेन्द्र मोदी का दुबारा सत्ता तक पहुँचना क्या जर्मनी के हिटलर की याद नहीं दिलाता। वह भी पूँजीवादी लोकतंत्र का खेल खेलते हुए जर्मन संसद 'राइखस्टाग' के भीतर दाखिल हुआ था और बाद में सारी सत्ता अपने हाथों में ले ली थी। यह तुलना थोड़ी बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई बात लग सकती है क्योंकि गुजरात समूचा हिन्दुस्तान नहीं उसका एक छोटा सा राज्य है। लेकिन पूँजीवादी लोकतंत्र के खेल की असलियत को समझने के लिए यह ग़लत भी नहीं है। पूँजीवादी लोकतंत्र के खेल के नियमों और उसकी आचार संहिताओं के नज़रिये से नरेन्द्र मोदी ने अगर कोई फाउल खेला भी तो सोनिया गाँधी ने भी वही किया। नरेन्द्र मोदी ने अगर भरी सभा में सोहराबुद्दीन के 'इनकाउण्टर' को सीना ठोंककर जायज ठहराकर अगर फाउल खेला तो सोनिया गाँधी ने भी मोदी को 'मौत का सौदागर' कहकर वही काम किया। आयोग ने, जो इस खेल का रेफ़री होता है, यही फैसला दिया है। आप चुनाव आयोग की इस 'निष्पक्षता' पर कैसे और कहाँ सवाल उठायेंगे!

लोकतंत्र के खेल में गुजरात का हिटलर जीता

गुजरात में मोदी और जर्मनी में हिटलर के सत्तारोहण में एक और समानता है। दोनों को देश के बड़े इज़ारेदार पूँजीपतियों का भरपूर समर्थन हासिल था। गुजरात में तथाकथित विकास की जो गंगा नरेन्द्र मोदी बहा रहे हैं उससे टाटा-बिड़ला-अम्बानी ही नहीं तमाम विदेशी पूँजीपति भी बेहद खुश हैं। गुजरात की दस फ़ीसदी से ऊपर की विकास दर की चर्चा पूँजीपतियों की हर सभा में नज़ीर की तरह दुहराई जाती है। 2002 के बाद पिछले पाँच सालों में हुए इस तथाकथित विकास में गुजरात के उद्योग-धन्धों में खट रही मेहनतकश आबादी की आवाज़ को सत्ता के आतंक से खामोश कर वैसी मरघटी शान्ति बहाल कर दी गयी है जैसी पूँजीपतियों को बेहद पसन्द है। इसीलिए 2002 में गुजरात जनसंहार का असली 'मास्टर माइण्ड' देश और दुनिया के पूँजीपतियों को

(पेज 6 पर जारी)

'जनचेतना' पर साम्प्रदायिक फासीवादी हमला

- प्रदर्शनी वाहन और पुस्तकों को क्षतिग्रस्त करने की कोशिश
- 'बिगुल' की प्रतियाँ जलायी
- कार्यकर्ताओं को जान से मारने की धमकी

कार्यालय संवाददाता

लखनऊ। साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों के असली चरित्र और उनके कारनामों को 'बिगुल' द्वारा लगातार उजागर किये जाने से ये ताकतें बौखला गयी हैं। उनकी बौखलाहट का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि बीते 9 जनवरी को मथुरा में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े कार्यकर्ताओं ने 'बिगुल' के उस अंक के प्रतियों को 'जनचेतना' के प्रदर्शनी वाहन से झपटकर जलाया जिसमें 'तहलका' के स्टिंग आपरेशन के हवाले से गुजरात नरसंहार पर विस्तृत सामग्री दी गयी थी। इतना ही नहीं ऐसे साहित्य का प्रचार करने वाले सचल प्रदर्शनी वाहन को क्षतिग्रस्त करने और साम्प्रदायिकता विरोधी अन्य क्रान्तिकारी साहित्य भी फाड़ने की कोशिश की। उन्होंने प्रदर्शनी कार्यकर्ताओं को जान से मारने की धमकियाँ भी दीं।

9 जनवरी को मथुरा शहर के बी.एस.ए. डिग्री कालेज के गेट पर जनचेतना की पुस्तक प्रदर्शनी चल रही थी कि अपने आपको संघ परिवार से जुड़ा बताने वाले कुछ युवकों ने आकर वहाँ प्रदर्शित 'बिगुल' अखबार के दिसम्बर '07 अंक में गुजरात चुनाव के सम्बन्ध में प्रकाशित समाचार को लेकर हंगामा शुरू कर दिया। वे धमकियाँ दे रहे थे कि "हिन्दुत्व" के खिलाफ प्रचार करने वालों का गुजरात के मुसलमानों और उड़ीसा के ईसाइयों से भी बुरा हाल करेंगे। कालेज के एक शिक्षक तथा छात्रों द्वारा बीच-बचाव की कोशिशों के बावजूद उन्होंने हंगामा और गाली-गलौच जारी रखा तथा बिगुल अखबार की सभी प्रतियों को जला दिया।

(पेज 5 पर जारी)

आँसुओं के महासागर में समृद्धि के टापू हुए और जगमग

दिल्ली। बीते साल में मुकेश अम्बानी और रतन टाटा का नाम दुनिया के दस सबसे बड़े खरबपतियों में शामिल होने की खबर पर सुखी-सन्तुष्ट चमकते चेहरों वाली जमातें जब खबरिया चैनलों पर इतरा रही थीं उसी समय यह भी खबर आयी थी कि देश की 77 करोड़ आबादी बीस रुपये रोज़ाना से भी कम आमदनी में गुजर-बसर करती है। लेकिन खबरिया चैनलों के लिए यह कोई खबर नहीं थी और अखबारों के पन्नों पर भी ये कोनों में दबी रहीं। गुजरे साल में समृद्धि और वंचना के दो विपरीत ध्रुवों को उजागर करती ये खबरें विकास के उस पूँजीवादी रास्ते के विरोधाभास का रूपक बनकर हमारे सामने उजागर हुईं जिस पर देश का शासक वर्ग आगे बढ़ता जा रहा है। फ़िलहाल ऐसा कोई कारण मौजूद नहीं कि नये साल में इस रास्ते से मुँह मोड़ लिया जायेगा। हाँ, हो सकता है चुनावी साल में इस रास्ते पर आगे बढ़ने की रफ़्तार में थोड़ी कमी आये।

विकास के इस पूँजीवादी रास्ते की विशेषता ही यह होती है कि धनी और गरीब की खाई लगातार चौड़ी होती जाती है। रोशनी की मीनारें जितनी अधिक जगमगाएँगी उनके नीचे का अँधेरा उतना ही अधिक गहराता जायेगा। देश के दस सबसे बड़े खरबपति हर मिनट में 2 करोड़ रुपये बना रहे हैं। अकेले मुकेश अम्बानी हर मिनट चालीस लाख रुपये कमा रहे हैं। और जिनका खून-पसीना निचोड़कर दौलत का यह अम्बार इकट्ठा हो रहा है उन मेहनतकशों की कमाई

बीता साल

साल भर में चालीस रुपये भी नहीं बढ़ सकी है? लेकिन "विकास" के इस स्याह पहलू से जानबूझकर आँखें फेरे खाये-पीये-अघाये लोग हमसे कहते हैं कि गर्व से कहिए मुकेश अम्बानी दुनिया के सबसे अमीर लोगों की सूची में चौथे नम्बर पर पहुँच गये हैं।

बीते साल देश की इस तरक्की पर शेयर बाजार के मिजाज को दर्शाने वाला संवेदी सूचकांक गर्व से इतना फूला कि सारे रिकार्ड ध्वस्त करते हुए तीस हज़ार का आँकड़ा पार कर गया। यानी शेयर और सट्टा बाजार के खिलाड़ियों पर भी छप्पर फाड़ धनवर्षा हुई। अपनी इन तमाम उपलब्धियों-कामयाबियों को सहेजती-समेटती, इतराती-इठलाती समूची कारोबारी दुनिया सिनेमा कारोबार के सितारों के साथ नये साल के स्वागत में पाँच सितारा होटलों में ठुमके लगाते हुए चरम सुख में डूब गयी। जब हाकिम खुश तो उनके टहलुए भी मगन! तमाम भ्रष्ट अफसरशाहों और "जनसेवकों" की जमातें ने भी पिछड़े से पिछड़े जिलों के मुख्यालयों में जाम टकराते हुए 'आइटम गर्ल्स' के साथ मस्ती और धमाल किया। कारपोरेट मीडिया और स्थानीय केबुल चैनलों तक ने इन रंगारंग जलसों को कैमरों में कैद कर घरों में टीवी के सामने बैठे मध्यवर्गीय जमातों को परोसा और अपनी-अपनी टी.आर.पी. बढ़ाते हुए नये "हैप्पी न्यू इयर" कहा।

इन खबरिया चैनलों के कैमरे उन पाँच सितारे होटलों के पिछवाड़ों तक नहीं पहुँचे जहाँ पार्टियों में परोसे गये व्यंजनों की जूठन फेंकी जाती है। जहाँ भूखे-नंगे लोग और कुत्ते एक साथ पेट की आग शान्त कर रहे होते हैं। यह भी देश के विकास के विरोधाभासों का एक रूपक है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने एक दोहे

(पेज 7 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

ग़रीब के लिए जाड़ा मतलब मौत से मुठभेड़

जाड़ा। यह अपने आप में एक भयानक शब्द है। अमीर-उमरा के लिए जिनके पास गर्म कपड़े, गर्म बिस्तर और गर्म कमरे हैं, उनके लिए यह खुशनुमा मौसम हो सकता है। लेकिन एक गरीब के लिए जाड़ा मौत के बराबर होता है।

सेक्टर 9 की झुग्गी में 16 दिसम्बर को मुंगेरी (मुन्नासाव) नाम के एक गरीब मज़दूर की ठण्ड लगने से मौत हो गयी। उसकी उम्र करीब 35 वर्ष थी। उसके परिवार में दो बेटे, तीन बेटियाँ और पत्नी हैं। मुंगेरी और उसकी पत्नी बेलदारी का काम करते थे और किराए पर एक झुग्गी लेकर रहते थे। मुंगेरी करीब बीस साल पहले कटिहार से नोएडा आया था और यहीं पर एक लड़की से उसने शादी भी कर ली थी।

इधर मुंगेरी की हालत ठीक नहीं चल रही थी। कमज़ोरी के चलते उसे काम नहीं मिल रहा था। फिर उसने एक ठेली पर अण्डा बेचना शुरू कर दिया था। लेकिन हालात बद से बदतर होते चले गए। पिछले आठ दिन से वह बीमार चल रहा था। लेकिन वह ठेला बन्द नहीं कर सकता था। रविवार के दिन उसे ज्यादा ठण्ड लग रही थी। वह ठेला बन्द कर कमरे पर आया, लेटा और कुछ देर बाद उसकी मौत हो गयी। उस समय रात के दस बज रहे थे।

अगले दिन करीब बारह बजे आस-पड़ोस के लोगों ने किसी तरह उसके दाह-संस्कार का इन्तजाम किया।

उसके बच्चे चिथड़े पहने इधर-उधर घूम रहे थे। किसी के पैर में चप्पल नहीं थी तो किसी के तन पर ऊनी कपड़े नहीं थे। बच्चों की माँ, जिसका शरीर सूखी लकड़ी जैसा था बार-बार बेहोश हो जाती थी। बच्चों की नानी और उसके पड़ोसी मज़दूर औरतें उसे सम्हालने की कोशिश कर रही थी। वहाँ किसी ने राय दी कि इसे कम से कम चाय पिला दो नहीं तो इसके भी शरीर में मुंगेरी से ज्यादा जान नहीं है। उस पर एक बूढ़ा मज़दूर डपट पड़ा, "जब तक लाश को दहा नहीं दिया जाता तब तक इसे कुछ नहीं देना चाहिए।" लेकिन कई लोगों ने इस बात का विरोध किया और उसे चाय पिलाई गयी। आसपास मुंगेरी जैसे ही कुछ लोग सब्जियों की ठेलियाँ लगा रहे थे, तो कुछ लोग ताश खेल रहे थे और कुछ ही दूरी पर लोग काम की तलाश में खड़े थे। क्योंकि आज वह ट्राली नहीं आयी थी जो रोज़ उन्हें भर कर ले जाती है।

साथियो! यही है इस व्यवस्था का असली सच, जहाँ मुंगेरी जैसे करोड़ों लोगों को हाशिए पर धकेल दिया गया है चाहे वे ठण्ड से मरें या गर्मी से। व्यवस्था के पैरोकार और उनके भाड़े के कलमघसीट चाहे जितनी आर्थिक विकास की दर बताएँ लेकिन सच्चाई यही है कि गरीबी, भूख, अभाव, रहने और काम करने की अमानवीय परिस्थितियाँ आम-मेहनतकश आबादी के जीने के साधनों को इतना कमज़ोर बना देती हैं कि ठण्ड के मौसम में हर रोज़ उनकी मौत से मुठभेड़ होती रहती है।

जनार्दन, नोएडा

मज़दूर साथियो! भगतसिंह को याद करो!

मैं लुधियाना में ढावा रोड कबीर मार्केट में रहता हूँ। मैं बिगुल का नियमित पाठक हूँ। मुझे बिगुल बहुत अच्छा लगा। मुझे विश्वास है कि बिगुल मज़दूरों की सोई हुई आत्मा को जरूर जगाएगा। मैं भी पहले किसी भी देश की क्रान्ति के बारे में नहीं जानता था। जब मैंने अपने गाँव में पहली बार संगठन का नाम सुना तो मुझे पता नहीं था कि संगठन क्या होता है। मेरे गाँव में क्रान्तिकारी संगठन के आदमी आते रहते थे। लेकिन जब मैं लुधियाना में 1998 में आया तो एक कारखाने में काम करने लगा। फिर यहाँ पर भी एक यूनियन संगठन से मुलाकात हुई। फिर मैं मज़दूर रैली में शामिल होने लगा। लुधियाना में जहाँ भी रैली होती, मैं वहाँ पहुँच जाता था। फिर एक रैली में मेरी मुलाकात नौजवान भारत सभा के एक साथी से हुई। उसे अपने कमरे का पता दिया। पहले भी मैं भगतसिंह और लेनिन के बारे में कुछ किताबें पढ़ चुका था। मुझे इतना मालूम हो गया था कि भगतसिंह भारत की जनता को कैसी आज़ादी दिलाना चाहते थे। नौजवान भारत सभा के साथी मेरे कमरे में मुझे मिलने के लिए आए तो उनसे बहुत सारी बातें हुई। जो बातें मेरे दिमाग में खटक रहीं थीं और साफ हो गईं। मैं बिगुल मज़दूर दस्ता की टोली में शामिल हो गया। अब मैं भी बिगुल का प्रचार गली-मोहल्ला में जाकर करता हूँ।

अब मैं उन मज़दूर साथियों को कहना चाहता हूँ जो क्रान्ति के नाम से कतराते हैं आज भी भगतसिंह का प्यारा वतन सीधी गुलामी की जगह चोर गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ है। आज हमारे मज़दूर गाँधी के बारे में सब कुछ जानते हैं लेकिन भगतसिंह के विचारों के बारे में जानने की कोशिश नहीं करते। अहमदाबाद के मज़दूर जब अपने हक अधिकार के लिए बैठे थे तब गाँधी ने कहा था हमें मज़दूरों से मेलमिलाप नहीं करना चाहिए क्योंकि ये मज़दूर बहुत खतरनाक हैं। लेकिन भगतसिंह जब तक रहे मज़दूरों और गरीब किसानों के लिए लड़ते रहे। हमें उनको याद करना चाहिए। उनके विचारों को अपनाना चाहिए।

विजेन्द्र कुमार

एक फैक्ट्री मज़दूर, लुधियाना

साथियो! कुछ सोचो, कुछ करो! घिस-घिस कर जीना छोड़ो!

मैं लुधियाना की एक होजरी में फ्लैट चलाता हूँ। फैक्ट्री का नाम फर्स्ट लाइन होजरी है। इसमें लगभग 300 मज़दूर काम करते हैं। आजकल फैक्ट्री पूरी तेजी से चल रही है। हर रोज 14-15 घण्टे काम करवाया जाता है। जो शादीशुदा हैं उनसे 12 घण्टे काम करवाया जाता है लेकिन जिनकी शादी नहीं हुई या जिनके परिवार गाँव में ही हैं उनसे 15 घण्टे काम करवाया जाता है। 15 घण्टे के काम के बाद भी बाबू का कहना होता है कि एक बजे तक काम कर लो, घर क्यों जाना है? पराठे खाओ और काम करते जाओ, परिवार तो है नहीं। यहीं सो लेना। सुबह चले जाना। नहा धोकर, खाना खाकर 9 बजे तक फिर आ जाना। यह हाल जनवरी महीने तक रहेगा।

हालत यह बनी हुई है कि रात साढ़े दस बजे तक काम करने के बाद बर्तन को साफ करने, खाना बनाने में एक बज जाता है। सुबह 6 बजे उठकर फिर वही दौड़ शुरू हो जाती है। रविवार को भी 3 बजे तक काम चलता रहता है। उसके बाद राशन खरीदने के बाद इतना भी समय नहीं बचता कि किसी दोस्त को मिला जा सके। समय के कमी के कारण खाना भी बढ़िया नहीं बन पाता। समय से खाया भी नहीं जाता। सेहत लगातार गिरती जा रही है। कई बार फैक्ट्री में कुछ कारीगरों से बात होती रहती है कि काम 12 घण्टे से ज्यादा न करें मगर कुछ कारीगर मालिक के खास हैं जो काम करते ही रहते हैं। ऐसे में मालिक कहता है कि बाकी तो काम करते रहते हैं, तो तुम्हें क्या तकलीफ है? जो नहीं करना चाहता वह हिसाब ले ले। यह एक महीना ही कमाने का है। अगर अब फैक्ट्री से बाहर धकेल दिया गया तो जल्दी काम मिलना भी नहीं। इसलिए मजबूरन इन्हीं हालातों में काम करना पड़ रहा है।

पिछले वर्ष तेजी के काम कुछ मज़दूरों ने 18-18 घण्टे काम करके 12-14 हजार तक महीना भी कमाया। मालिक ने ज्यादा कमाई होती देखी तो इस वर्ष मालिक ने पहले ही पीस रेट दो रुपये कम ही रखा। यही 2-3 महीने ही तो काम अच्छा चलता है। सीजन के दौरान जोर मारकर काम करके कमाई हो जाती है। बाकी महीनों के दौरान तो इतना काम भी नहीं होता कि खुराकी भी पूरी हो सके। सीजन के दौरान की गई कमाई के सहारे ही बाकी के महीने गुजारा चलता है। मगर पीस रेट लगातार घटाए जाने पर सीजन में इतनी कमाई होती नजर नहीं आ रही कि बाकी के समय का गुजारा चल पाए। जो सीजन पहले लगभग पूरा वर्ष चलता था अब 3 महीने तक सिमट कर रह गया है। इस वर्ष होजरी में अक्टूबर में तेजी आई जो मुश्किल से जनवरी से आधे तक ही चलेगी।

होजरी के काम को किसी समय खूब आज़ादी वाला माना जाता था। जितना काम उतना पैसा। कोई बन्दिश नहीं। मगर अब काम पूरे जोर का, लेकिन पैसा मुश्किल से ही गुजारे लायक हो पाता है। आटे की थैली जो पहले 50-55 रुपये की थी अब 130 रुपये की मिलती है। मालिकों की गुण्डागर्दी भी बढ़ गई है। पीस रेट का काम होने के बावजूद भी जबर्दस्ती ज्यादा समय काम लिया जाता है क्योंकि सीजन में उन्हें जरूरत है मगर हमारी जरूरत का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। जब सीजन ऑफ हो जाता है तो हिसाब कर देते हैं। किसी भी तरह की जिम्मेवारी से भाग खड़े होते हैं। लुधियाना में कई बार ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं जिनमें आदमियों की मौत भी हो जाती है। पर मालिकों को कोई सिरदर्द नहीं होता, उन्हें तो बस प्रोडक्शन चाहिए। रात में कई फैक्ट्रियों में बाहर से ताले लगा दिए जाते हैं। मज़दूर अन्दर काम करते रहते हैं। ताले मालिक ही अगले दिन फैक्ट्री पहुँचने पर खोलते हैं। अब समझ में आ रहा है कि ठेकेदारी या पीस रेट वाला सिस्टम असल में लूट तेज करने के लिए और मालिकों की सेवा के लिए है न कि कारीगर की आज़ादी के लिए क्योंकि मालिक की जरूरत के लिए तो 18-18 घण्टे भी काम करना पड़ता है लेकिन कारीगर की जरूरत की कोई अहमियत नहीं है। इसलिए होजरी वाले मज़दूरों को सोचना पड़ेगा कि इसी तरह खतरे पर काम करते हुए, रोज-रोज शरीर तोड़ते हुए जीवन खत्म कर दिया जाए, या फिर अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर कुछ सोचें, कुछ करें।

सुशील

लुधियाना से एक मज़दूर

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर (कम्युनिस्टों) और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006**

सम्पादकीय उपकार्यालय : **जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ**

दिल्ली सम्पर्क : **बी-108, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-94 फ़ोन : 011-65976788**

ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्य : एक प्रति रु. 3.00 वार्षिक रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :

1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 16/6, वाघम्बरी हाउसिंग स्कीम अल्लापुर, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए ज़रूरी कुछ पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा –लेनिन	5/-
मकड़ा और मक्खी –विल्हेल्म लीब्कनेख्त	3/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके –सर्जी रोस्तोवस्की	3/-
अनवश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ	10/-
समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति	12/-
क्यों माओवाद?	10/-
मई दिवस का इतिहास	5/-
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल	12/-
पेरिस कम्यून की अमर कहानी	10/-
पार्टी कार्य के बारे में	15/-
जनता के बीच पार्टी का काम	30/-

बिगुल विक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17/- रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें : **जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ**

उद्योग नगरी नोएडा में कायम है जंगल राज

बिगुल संवाददाता

नोएडा। एशिया की इस प्रतिष्ठित औद्योगिक नगरी में अपनी शर्तों पर मनमाने तरीके से काम कराना और जब पेमेण्ट की बात आए तो दुत्कार कर भगा देना आम बात है। काम के घण्टे, न्यूनतम मज़दूरी, बोनस, इ.एस.आई. सुविधा का कोई क़ानून यहाँ काम नहीं करता है। सब जंगल राज की तरह चलता रहता है। पिछले दिनों सेक्टर 63, एच-107 स्थित कामाक्षी इम्पैक्ट नामक एक कम्पनी में मालिक, पुलिस, ठेकेदार और लेबर इंस्पेक्टर द्वारा उद्योग चलाने का जो नायाब नमूना पेश किया गया उसके आइने में इस जंगल राज की एक झलक मिल जायेगी।

एक पूँजीपति ने अभी दो महीने पहले यह फैक्ट्री चलानी शुरू की थी। उसने 70 मज़दूरों की भर्ती की। इसमें राजेश और उसके मातहत काम करने वाले मनोज की ठेकेदारी शुरू हुई। मालिक ने भर्ती लेते समय बताया था कि ठेकेदार ने तो सिर्फ भर्ती की है, पेमेण्ट कम्पनी ही करेगी। पहला माह बीता तो मालिक ने पीस रेट पर काम करने के लिए कहा। तीस मज़दूरों ने काम करने से इन्कार कर दिया। जब पेमेण्ट की बात हुई तो ठेकेदार आधा-अधूरा पैसा देकर हफ्ते भर इधर-उधर दौड़ाता रहा। उन्हीं में से एक मज़दूर ने बिगुल मज़दूर दस्ता के लोगों से सम्पर्क किया।

बिगुल मज़दूर दस्ता के प्रतिनिधियों ने मज़दूरों की मीटिंग करके फैक्ट्री मालिक से एक साथ मिलने का निर्णय लिया। तयशुदा कार्यक्रम के अनुसार सभी लोग फैक्ट्री गेट पर पहुँचे। गार्ड ने अन्दर सूचना दी कि मज़दूर मालिक से बात करना चाहते हैं। वापस आने पर उसने मज़दूरों को बताया कि मालिक नहीं मिलेगा और कह रहा है कि अभी पुलिस बुला रहा हूँ। इस पर मज़दूरों ने फिर उससे कहा कि वे लोग भी पुलिस बुला सकते हैं। गार्ड ने यह सूचना पुनः अन्दर भेजी। इस समय 15 मज़दूर और उनके प्रतिनिधि कम्पनी गेट के अन्दर खड़े थे। उनसे मालिक ने छत के ऊपर से ही पूछा तुम कौन हो, कहाँ से आये हो, अभी पुलिस को बुलाता हूँ। मालिक की इस धमकी से ही कुछ मज़दूर बाहर खिसक लिए, कुछ खड़े रहे। कुछ देर में ही पुलिस भी आ गयी। इसके बाद मालिक नीचे आया और तुरन्त अपना मुँह बनाकर दुखड़ा रोने लगा कि मैंने अभी-अभी कारोबार शुरू किया है। ठेकेदार को पेमेण्ट कर दिया है और दोबारा पेमेण्ट नहीं कर सकता। इस समय मालिक ने इस बात को मानने से इन्कार कर दिया कि तय यह हुआ था कि पेमेण्ट ठेकेदार नहीं कम्पनी ही करेगी। ठेकेदार के लाइसेन्स का कागज माँगने पर मालिक ने कहा कि सारा रिकार्ड मेरे पास है। लेकिन लाइसेन्स की कापी 'खोजने' लगा तो नहीं मिला। इस पर श्रीमान दरोगा जी ने फरमाया कि, "भाई कम्पनी मालिक का क्या दोष है, कम्पनी तो चलनी चाहिए।"

कम्पनी से लौटकर मज़दूरों ने लेबर कोर्ट में एक अर्जी दी। इस पर लेबर इंस्पेक्टर ने जाँच भी किया लेकिन पहली मुलाकात में ही उन्होंने भी उवाचा कि, "भाई मालिक का कोई दोष नहीं कम्पनी तो चलनी चाहिए।" फिर भी जिन आठ लोगों के अर्जी पर हस्ताक्षर हैं कम से कम में उनका भुगतान करा दूँगा।

जब उनसे पूछा गया कि उन्होंने क्या जाँच किया और उन्हीं आठ लोगों का भुगतान क्यों? इस पर वे बगले झाँकने लगे।

बकाया भुगतान करते समय मालिक ने फिर वही कारनामा कर दिखाया। हिसाब बनाते समय मेज के इर्द-गिर्द मालिक के साथ-साथ कम्पनी के वकील भी मौजूद थे। मालिक ने ऐसा हिसाब बनाया कि मज़दूरों के होश गुम। जिनका रु. 1200 बाकी था उनका 600 जिनका 800 था उनका 300 आया था। इस पर लेबर इंस्पेक्टर ने कहा कि जितना मिल रहा है उतना ले लो। हमलोग तो यही चाहते हैं कि दोनों लोगों का काम चल जाय। कुछ मज़दूरों ने आगा-पीछा करके ले लिया और कुछ को जिनका अर्जी में नाम नहीं था, ठेकेदार ने पहले ही फोड़ लिया था। लेकिन राजकुमार नाम का एक मज़दूर नौजवान बिगड़ गया। मालिक ने उसका हिसाब और "ठीक" से कर दिया था। मतलब कि रु. 1200 की जगह अब केवल 75 रु. आया। राजकुमार ने कहा हिसाब दिखाओ इस पर मालिक ने तमाम कटौतियों को गिनाते हुए हिसाब दिखा दिया। उसमें ओवर टाइम में दिये गये भोजन (नाइट ड्यूटी लगाने पर कम्पनी की तरफ से खाने का जो पैसा मिलता है) को भी पेमेण्ट में से काट लिया गया था। हिसाब राजकुमार की समझ के बाहर था। उसने रु. 75 फेंक दिये और कहा, "एक बार और हिसाब करो, पचहत्तर रुपया भी उसी में समा जाएगा।"

इस पूरी प्रक्रिया के दौरान मज़दूर बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं से पूछते रहे कि आप लोगों को कितना देना होगा। बिगुल मज़दूर दस्ता के प्रतिनिधि ने इस संवाददाता को बताया कि मज़दूरों के लिए यह सवाल पूछना कोई अटपटी बात नहीं थी। कारण कि नोएडा में सक्रिय ट्रेड यूनियन नेताओं को अब तक उन्होंने ऐसी ही दलाली करते देखा था। मज़दूरों का पैसा दिलवाने की एवज में ये दलाल नेता भी अपना "मेहनताना" उनसे वसूलते हैं। उन्होंने बताया कि मज़दूरों को ट्रेड यूनियन दलालों के चंगुल से बाहर निकालने में वक्त लगेगा। उनके अन्दर क्रान्तिकारी चेतना पैदा करने के लिए धीरज के साथ समर्पित लोगों को लगातार सक्रिय रहना होगा। प्रचार-प्रसार के साथ-साथ मज़दूरों के रोज़मर्रा के संघर्षों में भी लगातार भारीदारी करने और उन्हें संगठित करने की प्रक्रिया में निश्चित रूप से दलाल टे ्ड यूनियनों से अलग एक नोएडा स्तरीय जुझारू संगठन का निर्माण हो सकेगा। बिगुल मज़दूर दस्ता के प्रतिनिधियों ने यह विश्वास जताया।

पूँजीपति-पुलिस गँठजोड़ का कारनामा

हक के बदले मज़दूरों को मिली लाठी, गोली, जेल

बिगुल संवाददाता

नोएडा। मज़दूरों से हाड़तोड़ काम करवाना और मज़दूरी माँगने पर बाहर का रास्ता दिखा देना सभी औद्योगिक क्षेत्रों में फैक्ट्री मालिकों की यह अन्धेरगर्दी भूमण्डलीकरण के दौर का आम चलन बन चुका है। और अगर कहीं मज़दूरों ने अपने हक की आवाज़ उठायी तो उन्हें बदले में मिल रही है लाठी, गोली और जेल। सेक्टर-4, प्लॉट संख्या-103 में भी बीते 14 दिसम्बर को यही कहानी दुहराई गयी।

पीतल के हैण्डिल, स्क्रू और कब्जा आदि बनाने वाली इण्डिया इण्टरनेशनल हाउस प्रा.लि. नामक इस कम्पनी के मालिक का नाम एस.के. गुप्ता है। नोएडा में इस कम्पनी की एक यूनिट और भी है सेक्टर 63, प्लॉट संख्या 244। इसके अलावा तीन यूनिटें साहिबाबाद में (ए-6, साहिबाबाद मण्डी, पारस दूध कम्पनी के निकट प्लॉट संख्या 8/5 और 28/2 पहला गढ़ी) तथा एक यूनिट मुरादाबाद में है। अपनी दबंगई और मनबढ़ई के दम पर सभी छह यूनिटों में इसने आतंकराज कायम किया हुआ है। मज़दूरों को कभी पूरा पेमेण्ट नहीं करना, आधा-अधूरा देकर फँसाये रखना आम बात है। किसी मज़दूर को पी.एफ., ई.एस.आई. और बोनस की सुविधा नहीं। मज़दूरों ने इस संवाददाता को बताया कि तीनों यूनिटों में चार-चार साल से काम कर रहे मज़दूरों के बोनस और पी.एफ. आदि को जोड़ लिया जाये तो ढाई से तीन लाख रुपये बकाया बनते हैं। इसके अलावा हर महीने आधा-अधूरा भुगतान करने से जो बकाया बनता है वह अलग से है।

कम्पनी मालिक ने अगस्त 2007 के आसपास ही साहिबाबाद की तीनों कम्पनियाँ अचानक बन्द कर दीं। न किसी को कोई हिसाब दिया और न ही किसी अन्य यूनिट में काम दिया। इस बारे में मालिक का केवल अखबारों में बयान आया कि रुपये के मुकाबले डालर की कीमत गिरने से निर्यात में कमी आयी है इसलिए उसने केवल कुछ मज़दूरों को काम से निकाला है। इन इकाइयों में 'सीटू' की यूनियन थी। उसके नेतृत्व में मज़दूरों के साथ लेबर कमिश्नर की मध्यस्थता में नवम्बर '07 में समझौता भी हुआ। समझौते के अनुसार नवम्बर में तीनों यूनिटें फिर से चालू हुई लेकिन पाँच दिन बाद ही फिर बन्द हो गयीं। कम्पनी मालिक किसी भी सूरत में न तो काम देने के लिए तैयार था और न ही हिसाब देने के लिए। फिर मज़दूरों ने धरना-प्रदर्शन शुरू किया लेकिन मालिक के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। मज़दूरों की एकता तोड़ने के लिए उसने एक शातिर चाल चली। जिन मज़दूरों के ज्यादा पैसे बकाया थे उनके घर चुपके से मनीऑर्डर भेज दिया। कितने पैसे भेजे गये थे इसका पता नहीं चल पाया। मज़दूरों के घरों से जब फोन आया तो उन्होंने मनीऑर्डर रिसीव करने से मना कर दिया।

साहिबाबाद में कोई सुनवाई न होते देख मज़दूरों ने पुलिस और डी.एल.सी. से परमिशन लेकर 14 दिसम्बर'07 को 250-300 की संख्या में नोएडा आकर सेक्टर-4, ए-103 स्थित मुख्य यूनिट पर धरना शुरू कर दिया। दिन में तकरीबन 11.30 बजे कुछ मज़दूर नेता गेट के अन्दर गये और मालिक को वार्ता के लिए बुलाने लगे। थोड़ी देर के बाद नेता वार्ता के लिए गये। वार्ता अभी चल ही रही थी कि गेट पर खड़े गार्ड से मज़दूरों की कुछ कहा-सुनी हो गयी। इसी समय गार्ड ने गोली चला दी जिससे दो मज़दूरों को टाँग में छर्रे लग गये।

अपने साथियों को घायल होते देख मज़दूर आक्रोशित हो गये और गेट फाँदकर भीतर घुस गये। आक्रोशित मज़दूरों ने भीतर कुछ तोड़-फोड़ शुरू कर दी। फिर मालिक के मुर्गों और चमचों से मज़दूरों की भिड़न्त हो गयी। एक घायल मज़दूर ने बताया कि ठीक इसी समय मालिक ने गार्ड से बन्दूक छीनकर गोली चलायी और दूसरे गार्ड को गाली देकर कहा कि अब क्या देखते हो, गोली चलाओ। फिर गार्ड ने भी गोली चलानी शुरू कर दी।

इस तरह कुल तीन राउण्ड गोलियाँ चलायी गयीं जिनमें कुल छह मज़दूरों को गम्भीर चोटें आयीं। एक मज़दूर को, जिसे सिर में गोली लगी थी, उसे 'एम्स' दिल्ली भेजा गया तथा एक अन्य मज़दूर को, जिसके कन्धे में गोली लगी थी, उसे नोएडा के ही मेट्रो हॉस्पिटल में और बाकी चार को जिला अस्पताल में इलाज के लिए भर्ती कराया गया।

मज़दूरों ने इस संवाददाता को बताया कि पहले राउण्ड भी गोली चलाने का आदेश भीतर से फोन के जरिये गार्ड को मालिक ने ही दिया था क्योंकि नेताओं के साथ वार्ता टूट गयी थी। इस पूरे घटनाक्रम के दौरान गेट के भीतर पुलिस मौजूद थी लेकिन उसने कम्पनी मालिक के प्रति अपनी वफादारी दिखाते हुए केवल गार्डों को बचाने का काम किया। इतना ही नहीं, मालिक के एफ आई आर पर पुलिस मज़दूरों के ठिकानों पर दबिश देकर उन्हें गिरफ़्तार करने में मुस्तैदी से जुटी हुई है जबकि मालिक और गार्डों के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की जा रही है।

मालिक और पुलिस की ओर से समूचे घटनाक्रम के बारे में दस्तूरी किस्म का बयान दिया जा रहा है कि मज़दूर तोड़-फोड़ कर रहे थे और हिंसक हो गये थे इसलिए गार्डों ने अपने बचाव में गोलियाँ चलायीं। यह सही है कि मज़दूर आक्रोश में थे और उन्होंने कुछ तोड़फोड़ भी की लेकिन ऐसा तब हुआ था जब कहासुनी के बाद गार्ड ने गोली चला दी थी। इसके बाद मज़दूरों का आक्रोश में आना स्वाभाविक था।

गोली काण्ड की घटना के बाद स्थानीय मज़दूरों में जबर्दस्त आक्रोश फैल गया। सेक्टर-4 के ए ब्लॉक और हरोला गाँव के सामने वाली सड़क जाम हो गयी थी। हज़ारों की संख्या में आक्रोशित मज़दूर वहाँ इकट्ठा हो गये थे। पुलिस बार-बार भीड़ को खदेड़ती लेकिन भीड़ फिर आ घेरती। काफ़ी समय बाद भीड़ तितर-बितर हो सकी। यह स्वतःस्फूर्त ढंग से इकट्ठा हुई भीड़ थी। अगर नोएडा स्तर पर मज़दूरों का कोई मजबूत संगठन होता तो एक बड़े आन्दोलन की ओर मामला मुड़ सकता।

'सीटू' के नेताओं ने इस समूचे घटनाक्रम के दौर में घुटनाटेकू रवैया अख़्तियार किया। मज़दूरों ने खुद इस संवाददाता को बताया कि उनकी यूनियन का रवैया सुरक्षात्मक ही रहा। घटनाक्रम को एक पखवारे से ज्यादा समय हो चुके हैं लेकिन सीटू की ओर से फैक्ट्री मालिक और पुलिस के गँठजोड़ से हुए इस खून-खराबे के ख़िलाफ़ दमदार कार्रवाई के लिए मज़दूरों को गोलबन्द करने की खातिर कुछ नहीं किया गया। उसके नेता केवल लिखा-पढ़ी की मरियल कार्रवाइयों में जुटे हुए हैं।

स्थानीय पुलिस द्वारा कम्पनी मालिक के लठैत और उसके सुरक्षाकर्मी की भूमिका में खड़े होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। सभी औद्योगिक क्षेत्रों में यह आम बात है। पुलिस व्यवस्था का यही चरित्र है। उनका काम ही है लुटेरे पूँजीपतियों को मज़दूरों के कोप से बचाना। पुलिस अधिकारियों की मज़दूरों के प्रति क्या धारणा होती है इसका एक जीता-जागता नमूना इस घटना के दौरान देखने-सुनने को मिला। गोली चलने के बाद मची अफरातफरी शान्त होने के बाद जब अभी भीड़ नहीं इकट्ठा हुई थी और केवल कुछ राहगीर ही मूकदर्शक की मुद्रा में कम्पनी गेट के पास खड़े थे तो कुछ मीडियाकर्मियों के सामने एक पुलिस अधिकारी ने मज़दूरों के प्रति अपनी नफरत का जिन शब्दों में इजहार की वह पुलिसिया मानसिकता का आइना है गेट पर खड़े-खड़े हँसी-ठट्ठा करते हुए एक मीडियाकर्मी से उसने कहा "अरे-रे-मेरी बात सुनो! लोग इन सालों को कहते हैं चिरकुट। ...भगवान ने चीरकर भेज दिया और हमने कूट दिया तो हो गया चिरकुट। हा-हा-हा।" इस पर मीडियाकर्मियों ने भी ज़ोर का ठहाका लगाया। फिर उस अधिकारी ने एक पत्रकार महोदय की पीठ पर धौल जमाते हुए कहा, "वाह, भाई हो तो ऐसा!" इतने में उसके मोबाइल की घण्टी बजी। उसने कहा, "लो एक और भाई का फोन आ गया। यह सारा वाकया श्रमिक मसले देखने वाले बुर्जुआ मीडिया से जुड़े पत्रकारों का चरित्र भी नंगा कर गया। ये श्रमिकों के प्रति नहीं वरन फैक्ट्री मालिक के प्रति वफादारी दिखाते हैं। जाहिर है बदले में समय-समय पर उनकी जेबें गरम होती रहती हैं।

प्रधानमंत्री जी आपके सवाल का जवाब मज़दूर वर्ग देगा!

हमारे देश के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के बारे में यह मशहूर है कि वे अर्थशास्त्र ज्यादा समझते हैं लेकिन राजनीति कम। यानि कि वे एक अच्छे अर्थशास्त्री हैं और कच्चे सियासतदान। इसलिए अक्सर वे इस तरह के बयान जारी करते रहते हैं जो कई बार उनकी पार्टी, कांग्रेस की लीडरशिप के लिए भी परेशानी का कारण बनते हैं। मसलन, वो पश्चिम बंगाल की मार्क्सवादी पार्टी पर अक्सर फिदा रहते हैं। इसके नेताओं ज्योति बसु और बुद्धदेव भट्टाचार्य का कई बार गुणगान कर जाते हैं क्योंकि प्रधानमंत्री के मुताबिक देश में आर्थिक सुधारों की नीतियाँ अगर कहीं बढ़िया रूप से लागू हो रहीं हैं तो वह बंगाल ही है। बंगाल की मार्क्सवादियों की अगुवाई वाली सरकार की यह तारीफ पश्चिम बंगाल के कांग्रेसियों के लिए खासा सिरदर्द बन जाती है क्योंकि बंगाल में मार्क्सवादियों की मुख्य 'विरोधी' पार्टी कांग्रेस ही है। वैसे मनमोहन सिंह हमारे देश के हुक्मरानों की, कांग्रेसियों की पहली पसन्द नहीं हैं। वर्तमान कांग्रेस सरकार बनने के समय सोनिया गाँधी के विदेशी होने के शोर-शराबे ने जोर पकड़ा तो भापजा को शिकस्त देने के लिए मजबूरन कांग्रेस ने मनमोहन सिंह को आगे कर दिया। इस तरह वे मजबूरी के ही प्रधानमंत्री हैं। दरअसल मनमोहन सिंह सोनिया गाँधी के हाथ में पकड़ी मोहर भर ही हैं।

भोले-शरीफ चेहरे वाले हमारे देश के प्रधानमंत्री विश्व बैंक के नौकर भी रहे हैं। 1991 में बनी कांग्रेस सरकार, जिसमें नरसिम्हा राव प्रधानमंत्री थे, वे वित्तमंत्री बने। 1991 में ही देश के पूँजीपति हुक्मरानों द्वारा अपनाई नई आर्थिक नीति के वे ही मुख्य कर्ताधर्ता थे। इस प्रकार साम्राज्यवादियों और देश के लुटेरे पूँजीपतियों के वे पुराने अनुभवी और मंजे हुए सेवक हैं। वे देशी-विदेशी पूँजीपति लुटेरों के सच्चे सेवक हैं और देश की मेहनतकश जनता के सच्चे शत्रु।

15 दिसम्बर को नई दिल्ली में *इंस्टीट्यूट ऑफ इकनामिक ग्रोथ* के गोल्डेन जुबली जश्नों में शामिल होते हुए उद्घाटन भाषण में उन्होंने कहा :

"समता का हमेशा अर्थ सब्सिडियाँ देना ही नहीं होता। अगर ऐसी सब्सिडियाँ गरीबों तक नहीं पहुँचतीं तो वह उद्देश्य पूरा नहीं कर पाती। जिस खातिर वे हैं।"

प्रधानमंत्री ने ऐसी सब्सिडियों का कड़ा पुनर्निरीक्षण करने तथा इन्हें खत्म किए जाने की तरफ इशारा किया। प्रधानमंत्री द्वारा जिन सब्सिडियों की तरफ इशारा किया गया है, उनमें खाद्य पदार्थों पर दी जाने वाली सब्सिडी भी शामिल है।

मनमोहन सिंह के इस बयान में कई अर्थ छुपे हुए हैं। पहला तो यह कि गरीबों को सरकार की तरफ से तो सब्सिडियाँ दी जाती हैं, जो कि खुद मनमोहन सिंह के अनुसार वर्तमान वित्त वर्ष में एक लाख करोड़ से भी ज्यादा की हैं, लेकिन वे गरीबों तक पहुँच नहीं पातीं। तो फिर यह लाखों करोड़ों रुपए की सब्सिडी जाती कहाँ है? प्रधानमंत्री समेत सभी जानते हैं कि देश के भ्रष्ट नौकरशाहों, राजनीतिज्ञों की फौज ही गरीबों को दी जाने वाली सब्सिडी निगल जाती है। इस तरह अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने पूरी व्यवस्था के अन्दर फैले चौतरफा लाइलाज भ्रष्टाचार को स्वीकार कर लिया है।

प्रधानमंत्री का कहना है कि क्योंकि सब्सिडियाँ गरीबों तक नहीं पहुँच पातीं, इसलिए उन्हें खत्म कर दिया जाना चाहिए। लेकिन उन सब्सिडियों को गरीबों तक पहुँचाने की जिम्मेदारी क्यों नहीं लेते? आखिर वे देश के प्रधानमंत्री हैं। लेकिन वे ऐसा नहीं करेंगे। क्योंकि वे जानते हैं कि मौजूदा व्यवस्था में ऐसा सम्भव नहीं है। इस तरह प्रधानमंत्री ने अप्रत्यक्ष रूप से यह भी मान ही लिया है कि मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था की राजनीति के शिखर तक पहुँचकर भी कोई व्यक्ति देश के साधारण मेहनतकश लोगों के पक्ष में चाह कर भी कुछ नहीं कर सकता, हाँ यह अलग है कि मनमोहन सिंह ऐसी कोई चाहत भी नहीं रखते।

प्रधानमंत्री के इस बयान का एक अर्थ यह भी है कि इस देश की मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था से गरीब मेहनतकश लोगों को भलाई की हर उम्मीद त्याग देनी चाहिए। ऐसा एक बयान लगभग बारह वर्ष पहले वर्तमान वित्त मंत्री जो उस समय वाणिज्य मंत्री थे, ने जारी किया था। जो बात मनमोहन सिंह ने गोल-मोल भाषा में कही है, वही बात चिदम्बरम ने सीधी सपाट भाषा में कही थी। उन्होंने कहा था : *"भारत की नब्बे करोड़ आबादी में तीस करोड़ को तो बढ़िया काम, बढ़िया स्कूल, और सुख-सन्तोष भरी ज़िन्दगी हासिल है। दूसरे 30 करोड़ ने बहुत सी उम्मीदें पाली हुई हैं, लेकिन उन्हें घटिया स्कूल ही उपलब्ध हैं। बाकी तीस करोड़ को न तो कोई काम हासिल है, न ही कोई स्कूल। उन्हें इस व्यवस्था से कोई उम्मीद नहीं है और न ही आर्थिक सुधारों से उन्हें कोई फायदा होने वाला है।"*

अपने भाषण में प्रधानमंत्री ने आर्थिक सुधारों के प्रति अपनी वचनबद्धता फिर दोहराई है। उन सुधारों के प्रति जिन सुधारों के बारे में चितम्बरम का कहना है कि उनसे साधारण गरीब जनता का कोई फायदा नहीं होगा। 1991 में नरसिम्हा राव-मनमोहन सिंह जोड़ी द्वारा नई आर्थिक नीति के तरह आर्थिक सुधारों के कार्यक्रम की शुरुआत की गई। उन आर्थिक सुधारों के मुख्य सूत्रधार मनमोहन सिंह ही थे। इन सुधारों में मुख्य रूप से देश के पब्लिक सेक्टर को कौड़ियों के भाव देशी-विदेशी पूँजीपतियों को सौंपना, विदेशी पूँजी के दाखिले को आसान बनाने के लिए भारतीय अर्थतंत्र के दरवाजे पूरी तरह खोलना, श्रम कानूनों को ज्यादा उदार बनाना, मतलब कि कानूनों में पूँजीपतियों के पक्ष के ऐसे बदलाव करना जिससे मज़दूरों का रोजगार पूरी तरह मालिकों के रहमोकरम पर निर्भर हो जाए, आदि मुख्य रूप में शामिल हैं। 1991 से नई आर्थिक नीति के बाद देश का अर्थतंत्र-राजनीति-समाज इसी दिशा में आगे बढ़ा है।

नई आर्थिक नीति के पिछले सोलह वर्षों में जहाँ देशी-विदेशी पूँजीपति माला-माल हुए हैं, उनके मुनाफे सैकड़ों नहीं हजारों गुना बढ़े हैं, वहाँ देश की अस्सी फीसदी गरीब मेहनतकश जनता का जीना और भी असहनीय होता चला गया है। देश में अमीर-गरीब के बीच असमानता की खाई और चौड़ी होती रही है। गाँव में रोजगार के स्थाई अवसर और भी सीमित हो जाने की वजह से मेहनतकश शहरों की तरफ भाग रहे हैं। शहर गुब्बारे की तरह फूलते ही जा रहे हैं। शहरों में झुग्गी-झोपड़ियों की बस्तियाँ लगातार बढ़ती जा रही हैं।

पूरे देश में पक्के रोजगार के मौके लगातार सिकुड़ते जा रहे हैं। नई आर्थिक नीति जो रोजगार के मौके पैदा भी हुए हैं, वहाँ भी स्थाई नौकरी के अवसर बहुत ही कम हैं। यहाँ काम के घण्टों की कोई सीमा नहीं है और वेतन बेहद कम हैं। नई आर्थिक नीति की बदौलत बेरोजगारों की गिनती में बड़े स्तर पर इजाफा हुआ है।

नई आर्थिक नीति के बाद भारतीय अर्थतंत्र विश्व पूँजीवादी अर्थतंत्र से और भी ज्यादा बँध गया है, खासकर अमेरिकी अर्थतंत्र में आने वाले उतार-चड़ाव के झटके बॉम्बे-स्टॉक ऐक्सचेंज में तुरन्त ही प्रगट हो जाते हैं। पिछले कुछ महीनों से अमेरिका में जो घटिया क्वालिटी के कर्जों का संकट चल रहा है, उससे जुड़कर बॉम्बे-स्टॉक ऐक्सचेंज में आए उतार-चढ़ावों से इस तथ्य को देखा जा सकता है।

हमारे कहने का अर्थ यह नहीं है कि 1991 से पहले भारतीय अर्थतंत्र में सब अच्छा है। दरअसल, 1947 के बाद भारत जिस पूँजीवादी राह पर आगे बढ़ा उसी का लाजिमी नतीजा 1991 की नई आर्थिक नीति थी। खैर यह अलग चर्चा का विषय है।

अपने इस भाषण में मनमोहन सिंह ने देश के अन्दर तीखे हो रहे ध्रुवीकरण, बढ़ रही गैर बराबरी, क्षेत्रीय असन्तुलन, गाँवों व शहरों में बढ़ रही गैर बराबरी पर भी चिन्ता व्यक्त की। *इंस्टीट्यूट ऑफ इकनामिक ग्रोथ* के गोल्डेन जुबली जश्नों में शामिल होने पहुँचे 'प्रसिद्ध' अर्थशास्त्रियों और विद्वानों से वे पूछते हैं, "क्या हम विकास में असन्तुलन और असमानता की समस्याओं के और अधिक तर्कपूर्ण समाधान ढूँढ़ सकते हैं?" मनमोहन सिंह इतने भोले तो नहीं दिखाई देते कि वे न जानते हों कि देश के मेहनतकश लोगों के खून पसीने की कमाई पर जीने वाली इन परजीवी जोकों का, इस पूँजीवादी व्यवस्था के सच्चे सेवक इन अर्थशास्त्रियों और विद्वानों का इन समस्याओं से कोई लेना-देना नहीं है। वैसे भी देश का अर्थतंत्र जिन आर्थिक सुधारों की राह पर तेज रफ्तार से दौड़ रहा है, जिन आर्थिक सुधारों की बदौलत ये समस्याएँ पैदा हुई हैं, उन्हीं आर्थिक सुधारों के सूत्रधार द्वारा ऐसा सवाल पूछा जाना भोलेपन और मूर्खता की नहीं बल्कि चालाकी की इंतहा है।

मनमोहन जैसे इस पूँजीवादी लुटेरी व्यवस्था की सेवा के लिए योजनाएँ-नीतियाँ बनाते हैं, उन्हीं नीतियों पर व्यवहार की बदौलत, समाज ज्यादा ध्रुवीकृत होता है, अमीर-गरीब के बीच की खाई और ज्यादा गहरी होती है। पूँजीवादी विकास के इन लाजिमी नतीजों से इस व्यवस्था के सेवक, योजनाकार, नीतियाँ बनाने वाले घबराते हैं, चिन्तित होते हैं। उनके मन में प्रकट होने वाला यह अन्तरविरोध दरअसल पूँजीवादी अर्थतंत्र का अन्तरविरोध है। ज्यादा पूँजीवादी विकास का अर्थ है समाज का दिन-ब-दिन और ज्यादा ध्रुवीकरण। समाज का दिन-ब-दिन और अधिक मालिकों और सम्पत्तिहीन मज़दूरों में बँट जाना। पूँजीवादी विकास की बदौलत अस्तित्व में आने वाले ये सम्पत्तिहीन उजरती गुलाम (आधुनिक मज़दूर) ही इस समूची व्यवस्था की कब्र खोदने वाले बनते हैं।

प्रधानमंत्री ने इस पूँजीवादी व्यवस्था के सेवक अर्थशास्त्रियों और विद्वानों से जो सवाल पूछा था, उसका उत्तर मज़दूर वर्ग देगा। इस पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर असन्तुलन और असमानता के तर्कपूर्ण हल असम्भव हैं। इन सब समस्याओं का तर्कसंगत हल इस पूँजीवादी व्यवस्था की तबाही में ही निहित है।

● **सुखविन्दर**

महँगाई से त्रस्त जनता से मंत्री ने कहा "चावल नहीं तो अण्डे खाओ"

कार्यालय संवाददाता

लखनऊ। शीर्षक पढ़कर चौंकिये मत। यह कोई चुटकुला नहीं है और न ही यह आज से सवा दो सौ साल पहले फ्रांस के राजा लुई सोलहवें की महारानी मारिया अंतोनियो हैंसबर्ग द्वारा राजमहल को घेरकर खड़ी भूखी-प्यासी जनता को दी गयी उस नसीहत की पैरोडी है जब उन्होंने कहा था कि खाने के लिए ब्रेड नहीं मिल रही तो केक खाओ। हम दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के एक मंत्री के बयान की चर्चा कर रहे हैं। यह नसीहत है केरल के खाद्यमंत्री सी. दिवाकरन की जो उन्होंने पिछले महीने चावल की आसमान छूती कीमतों से त्राहि-त्राहि कर रही गरीब जनता को दी थी।

मंत्री महोदय ने जनता को नसीहत दी कि चावल नहीं मिल रहा तो गाय और मुर्गियाँ पालो, दूध पीओ और अण्डे खाओ, बीच-बीच में मुर्गियों को मारकर गोश्त का मजा भी लो। कहते हैं कि महारानी तो शायद अनपढ़ थीं लेकिन मंत्री महोदय बी.ए.-बी.एड. हैं, और छात्र जीवन से ही भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का परचम थामकर राजनीति कर रहे हैं। वह केरल के कोल्लम जिले के करुनगपल्ली से इसी पार्टी के टिकट पर चुनकर विधायक और मंत्री बने हैं।

शायद आपको हैरत हो रही हो कि किसी कम्युनिस्ट मंत्री ने भला ऐसा बयान कैसे दे डाला। लेकिन आपको हैरत में नहीं पड़ना चाहिए। पूँजीवादी संसदों-विधानसभाओं में बैठकर समाजवाद लाने का सब्जबाग दिखाने वाले नामधारी कम्युनिस्ट इतने ही गन्दे और संवेदनहीन होते हैं। भले ही ये लाल परचम उड़ाते हैं, गरीबों-मेहनतकशों की हिमायत में और साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ ज़ोरदार भाषण देते हैं, ये नकली कम्युनिस्ट दरअसल सर्वहारा क्रान्ति के गद्दार और पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के दलाल हैं। आधी सदी से ज्यादा समय हो गया जब ये पाला बदलकर बुर्जुआ खेमे में शामिल हो गये थे। इन संसदमार्गी कम्युनिस्टों से जितनी नफ़रत की जाये कम है। ऐसे ही पतित कम्युनिस्टों के बारे में नाजिम हिक़मत ने एक बार कहा था, "भले ही तुम उस घर में घुस जाओ जहाँ प्लेग हो, लेकिन उस घर की देहरी भी मत लाँघना जहाँ (साम्राज्यवादियों, पूँजीपतियों का) दलाल रहता हो।" अपने खास अन्दाज में नाजिम आगे कहते हैं, "और गर इत्तिफ़ाक़न तुम्हारा हाथ उससे छू जाये तो उसे सात बार धोओ और मैं अपनी एकमात्र खूबसूरत कमीज (जो मैं उत्सवों पर, छुट्टियों में इस्तेमाल करता हूँ) फाड़कर तुम्हें तौलिये की तरह प्रयोग करने के लिए दूँगा।"

ये नकली कम्युनिस्ट, जिन्हें मार्क्सवाद के बुनियादी सिद्धान्तों में संशोधन कर उसकी आत्मा निकाल लेने के कारण संशोधनवादी कहा जाता है, इतने ही गन्दे और घिनौने होते हैं। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संशोधनवादी राजनीतिक संस्कारों में पला-बड़ा मंत्री अगर इतना संवेदनहीन और जनविरोधी है तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। क्या बुद्धदेव भट्टाचार्य ने भी नन्दीग्राम में नरसंहार और स्त्रियों से बलात्कार करने वाले माकपा काडरों के बचाव में यह नहीं कहा था कि उन्होंने जो किया वह क़ानूनी और नैतिक रूप से सही है।

लोगों को चावल के बदले अण्डे और दूध खाने की नसीहत देने वाले इस संवेदनहीन मंत्री को क्या यह नहीं पता कि चावल इस देश के बहुसंख्यक गरीब मेहनतकश लोगों का मुख्य भोजन है जबकि अण्डा और दूध का इस्तेमाल मुख्य भोजन के अतिरिक्त किया जाता है। देश की गरीब आबादी को दो वक्त की रोटी या चावल ही मिल जाये बहुत है, दूध और अण्डे के बारे में तो वह सोच भी नहीं सकती।

लगता है सत्ता के मद में चूर मंत्री महोदय फ्रांस की महारानी का हश्र भूल गये हैं। महारानी मारिया अंतोनियो को अपने कर्मों की भयानक सज़ा भुगतनी पड़ी थी। फ्रांसीसी जनता ने 1793 में क्रान्ति का बिगुल बजा दिया था। इस मगरूर महारानी को गिरफ़्तार कर, दो दिन की सुनवाई के बाद ही मौत की सज़ा सुना दी गयी थी।

'जनचेतना' पर साम्प्रदायिक फासीवादी हमला

(पेज 1 से आगे)

उन्होंने प्रदर्शनी में भगतसिंह की 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' और 'जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो' जैसी पुस्तिकाओं और राधामोहन गोकुलजी, राहुल सांकृत्यायन आदि सहित अन्य पुस्तकों को भी फाड़ने की कोशिश की और प्रदर्शनी वाहन में तोड़फोड़ का प्रयास किया और उसे आग लगाने की धमकी दी।

स्थानीय नागरिकों के एक प्रतिनिधि मण्डल द्वारा आज मथुरा के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक से मिलने के बाद एस.एस.पी. ने इस मामले में तत्काल प्राथमिकी दर्ज करके कार्रवाई के आदेश दिए हैं।

इस बीच उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री सुश्री मायावती तथा केन्द्रीय गृहमंत्री को 'जनचेतना' द्वारा भेजे गए ज्ञापन में कहा गया है कि पिछले कुछ माह के दौरान 'जनचेतना' की सचल पुस्तक प्रदर्शनियों को साम्प्रदायिक तत्वों द्वारा बार-बार निशाना बनाए जाने तथा सभी जगह हंगामा करने वालों की एक जैसी भाषा से स्पष्ट है कि एक सुनियोजित षड्यंत्र के तहत ऐसा किया जा रहा है।

मालूम हो कि भगतसिंह जन्मशताब्दी वर्ष के अवसर पर 'जनचेतना' द्वारा पूरे हिन्दी भाषी क्षेत्र में प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी साहित्य की सचल पुस्तक प्रदर्शनियाँ आयोजित की जा रही हैं। इन प्रदर्शनियों में जगह-जगह बजरंग दल, विहिप और संघ से जुड़े लोग धमकियाँ देते रहे हैं या हंगामा करने की कोशिश करते रहे हैं। पिछले 11 अक्टूबर को मेरठ में बजरंग दल के लोगों ने राहुल फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित भगतसिंह, राधामोहन गोकुलजी, राहुल सांकृत्यायन आदि की पुस्तकों तथा साम्प्रदायिकता विरोधी पर्चों-पुस्तिकाओं को लेकर हंगामा किया था तथा पुलिस में झूठी शिकायत दर्ज कराई थी। उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर, हापुड़, मुरादाबाद आदि शहरों के अलावा जयपुर में 'जनचेतना' की प्रदर्शनियों के दौरान संघ परिवार से जुड़े लोग आकर बार-बार उलझते और धमकियाँ देते रहे हैं। गत नवम्बर में दिल्ली के रोहिणी क्षेत्र में आयोजित पुस्तक प्रदर्शनी में कुछ लोगों ने "बजरंग दल वालों" को भेजने और "देख लेने" की धमकी दी थी।

पिछले 4 नवम्बर, 2007 की सुबह बजरंग दल के करीब 35-40 कार्यकर्ताओं ने नौजवानों की पत्रिका 'आह्वान' और 'नौजवान भारत सभा' के करावल नगर, दिल्ली स्थित कार्यालय पर आकर धमकी दी कि यदि हमने अपना अभियान बन्द नहीं किया तो हमें इसके गम्भीर नतीजे भुगतने होंगे।

उस दौरान नौ.भा.स. और दिशा छात्र संगठन गुजरात में हिन्दू फ़ासिस्टों की घृणित करतूतों के नये खुलासे के बाद इस मुद्दे पर निकाले गये पर्चे के साथ विभिन्न इलाक़ों में सभाएँ और सघन जनसम्पर्क करते हुए व्यापक अभियान चला रहे थे। एक सप्ताह में करावल नगर, मुकुन्द विहार, अंकुर एन्क्लेव, कमल विहार, भजनपुरा, चाँदपुरा, मुस्तफ़ाबाद आदि इलाकों में नौ.भा.स. और दिशा के कार्यकर्ताओं ने 50 से अधिक सभाएँ कीं और हज़ारों पर्चे बाँटे। इलाके में बजरंग दल और संघ परिवार के लोग इससे बुरी तरह बौखलाये हुए हैं। दिशा और नौ.भा.स. ने दिल्ली विश्वविद्यालय, नोएडा, ग़ाज़ियाबाद, लखनऊ, इलाहाबाद और पूर्वी उत्तर प्रदेश में भी यह अभियान ज़ोर-शोर से चलाया।

पिछले 3-4 वर्षों के दौरान पूरे करावल नगर क्षेत्र में नौ.भा.स. और "दिशा" के काम से ये तत्व पहले ही खुन्दक खाये हुए हैं और पहले भी कई बार इनकी ओर से इन संगठनों को धमकियाँ मिलती रही हैं। क्रान्तिकारी विचारों एवं साहित्य के प्रचार से और अन्धविश्वास, पोंगापन्थ, ढपोरशंखी बाबाओं आदि के विरुद्ध इनके पर्चों, नाटकों आदि से भी ये चिढ़े हुए हैं।

कार्यालय पर धावा बोलने वाली बजरंग दलियों की भीड़ ने हमारे कार्यकर्ताओं को सीधे-सीधे धमकियाँ दीं कि वे "यहाँ भी गुजरात बना देंगे और तुम लोगों का एहसान जाफरी से भी बुरा हश्र करेंगे।" उन्होंने कार्यालय को जला देने और बम से उड़ा देने की भी धमकी दी। वे खुलेआम दावा कर रहे थे कि स्थानीय भाजपा विधायक और पार्षद पूरी तरह उनके साथ हैं। ये दोनों तथाकथित जनप्रतिनिधि संघ की विचारधारा के कट्टर समर्थक हैं। इसके अलावा, स्थानीय समस्याओं को लेकर नौ.भा. स. की ओर से चलाये गये कुछ आन्दोलनों की सफलता तथा उनको मिले जनसमर्थन से भी उनकी बौखलाहट बढ़ गयी है।

हमें पता चला है कि ये तत्त्व 'आह्वान' और नौ.भा.स. कार्यालय पर हमला करने की योजना बना रहे हैं। सभी फ़ासिस्टों की तरह, सत्ता के समर्थन के बिना इनमें सीधे-सीधे हमला करने की हिम्मत नहीं है, इसलिए हमें आशंका है कि ये किसी ख़तरनाक साज़िश में लगे हैं। इन तमाम धमकियों के बावजूद नौ.भा.स. और दिशा इस मुहिम को जारी रखने के लिए दृढ़संकल्प हैं।

पिछले 11 अक्टूबर को मेरठ में बजरंग दल के लोगों ने पहले तो राहुल फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित राधामोहन गोकुलजी की पुस्तिकाओं (धर्म का ढकोसला, ईश्वर का बहिष्कार, लौकिक मार्ग, स्त्रियों की स्वाधीनता), राहुल सांकृत्यायन की 'तुम्हारी क्षय' आदि को लेकर गाली-गलौज व धमकियाँ दीं, फिर भगतसिंह की पुस्तिकाओं 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' और 'जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो' को लेकर उल्टी-सीधी बकने लगे। हमारे साथियों के साथ ही मेरठ विश्वविद्यालय के कुछ छात्रों द्वारा भी इसका विरोध करने पर वे चले गये, लेकिन उनसे जुड़े एक स्थानीय वकील की झूठी शिकायत पर रात के दस बजे डीएसपी के नेतृत्व में पुलिस प्रदर्शनी बन्द कराने पहुँच गयी। शिकायत में कहा गया था कि हम भगतसिंह को "आतंकवादी" घोषित करने वाली पुस्तकें बेच रहे हैं। शिकायत को बेबुनियाद पाकर पुलिस तो लौट गयी लेकिन स्थानीय थानाध्यक्ष ने हमारे साथियों से कहा कि ये लोग रात में कुछ भी गड़बड़ी कर सकते हैं इसलिए आप अपना प्रदर्शनी वाहन कहीं और ले जाइये। इन्हीं तत्त्वों की साँठ-गाँठ से अगले दिन दैनिक 'हिन्दुस्तान' के मेरठ संस्करण में एक पूरी तरह झूठी ख़बर प्रकाशित हुई जिसके अनुसार भगतसिंह को आतंकवादी कहने पर युवाओं ने 'जनचेतना' की प्रदर्शनी में ख़ूब हंगामा किया।

इसके बाद भी पिछले दिनों मुजफ्फरनगर, हापुड़, मुरादाबाद आदि शहरों में 'जनचेतना' की प्रदर्शनी के दौरान संघ परिवार से जुड़े लोग आकर बार-बार उलझते और धमकियाँ देते रहते हैं। इनमें से ज्यादातर का कहना था कि हम लोग भगतसिंह के नाम पर झूठी बातें छापकर लोगों को भड़का रहे हैं। उनकी भाषा ठीक वही होती थी जो 'पांचजन्य' में छपे देवेन्द्र स्वरूप के लेख की थी जिसमें उन्होंने राहुल फाउण्डेशन, प्रो. जगमोहन सिंह और डॉ. चमनलाल का नाम लेकर आरोप लगाया था कि ये लोग भगतसिंह को जबरन कम्युनिस्ट बनाने पर तुले हुए हैं और भगतसिंह के नाम पर फ़र्ज़ी दस्तावेज़ छाप रहे हैं। अभी 16-18 नवम्बर तक दिल्ली के रोहिणी क्षेत्र में आयोजित पुस्तक प्रदर्शनी में तो इनके कुछ लोगों ने सीधे-सीधे बजरंग दल वालों को भेजने की धमकी दी। उनका कहना था कि तुम लोग तो हमारी जड़ ही काटने में लगे हो।

जनचेतना की अध्यक्ष एवं सुपरिचित लेखिका कात्यायनी ने कहा है कि हर प्रकार के प्रगतिशील, जनपक्षधर, क्रान्तिकारी साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने के जनचेतना एवं राहुल फाउण्डेशन के अभियान को ऐसी धमकियों से हरगिज रोका नहीं जा सकता। उन्होंने कहा कि ऐसी कार्रवाइयाँ साम्प्रदायिक व फासिस्ट ताकतों की बौखलाहट को ही दर्शाती हैं। इस मुहिम को अब और तेज किया जाएगा। उन्होंने सभी जनपक्षधर लेखकों, पत्रकारों, प्रकाशकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं जनसंगठनों से जनचेतना पर इन हमलों का विरोध करने की अपील की है।

इस घटना की देश के अलग-अलग हिस्सों में तीखी निन्दा करने और विरोध की अन्य कार्रवाइयों की ख़बरें 'बिगुल' कार्यालय को लगातार मिल रही हैं। तमाम प्रगतिशील, धर्मनिरपेक्ष और जनवादी संगठनों और व्यक्तियों ने विभिन्न तरीकों से अपना विरोध दर्ज कराया है। देश भर के लेखकों- बुद्धिजीवियों, पत्रकारों द्वारा साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों के इस साजिशाना हमलों का विरोध करने की ख़बरें बिगुल कार्यालय को प्राप्त हो रही है। अब तक मिली जानकारी के अनुसार ज्ञानरंजन, मलय, शमशुल इस्लाम, पंकज सिंह, अलीम, सुरेन्द्र कुमार, किशन कलजयी, प्रेमपाल शर्मा, सुरेश नौटियाल, वीरभारत तलवार, विष्णु नागर, नीरद जनवेणु, आशीष गुप्ता, आशुतोष पाठक और मंजुला बोस ने विभिन्न माध्यमों से अपना विरोध दर्ज कराया है और सभी प्रगतिशील एवं धर्मनिरपेक्ष ताकतों की व्यापक एकजुटता का आह्वान किया है।

'जनचेतना' पर हमले के विरोध में गोरखपुर के लेखकों-बुद्धिजीवियों -संस्कृतिकर्मियों ने एक बैठक कर इस घटना के प्रति अपना विरोध जताया। बैठक गोरखपुर में पिछले दो दशकों से हर साल आयोजित होने वाली वार्षिक पुस्तक प्रदर्शनी के पण्डाल में हुई। बैठक में एक विरोध प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें कहा गया है कि, "भगत सिंह, राधामोहन गोकुलजी, और राहुल सांकृत्यायन की रचनाओं को नुकसान पहुँचाया जाना और मज़दूर अख़बार 'बिगुल' की प्रतियों को जलाना हमारी क्रान्तिकारी एवं प्रगतिशील चिन्तन की विरासत पर एक फासीवादी हमला है। यह अभिव्यक्ति की हमारी आज़ादी और जनतंत्र के बुनियादी मूल्यों पर हमला है। हमला करने वाली ये ताकतें वहीं हैं जो तथाकथित हिन्दुत्व के नाम पर हमारे समाज के जनतांत्रिक ढाँचे और विचार एवं रचना-कर्म की बुनियादी आज़ादी पर देश भर में हमले कर रही हैं।"

विरोध प्रस्ताव में गोरखपुर एवं देश के सभी जनतंत्रप्रेमी नागरिकों का आह्वान करते हुए कहा गया है कि वे "हमारे देश की क्रान्तिकारी विरासत और प्रगतिशील जीवन-मूल्यों एवं संस्कृति पर हमला करने वाली इन साम्प्रदायिक फासीवादी शक्तियों के ख़िलाफ़ अपनी एकजुटता तेज करें जिससे समाज को मध्ययुगीन सामन्ती बर्बरता की ओर ले जाने वाली इन शक्तियों के मंसूबों पर रोक लगायी जा सके।"

विरोध प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने वालों में सुप्रसिद्ध इतिहासकार और गोरखपुर विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. हरिशंकर श्रीवास्तव, प्रो. परमानन्द श्रीवास्तव, कथाकार मदन मोहन, आलोचक कपिल देव, कवि वेद प्रकाश, जनवादी लेखक संघ के प्रमोद कुमार, डॉ. अनिल राय, माध्यमिक शिक्षक संघ, उ.प्र. के प्रदेश अध्यक्ष जगदीश पाण्डेय ठकुराई, कार्टूनिस्ट एवं फिल्मकार प्रदीप सुविज्ञ, पीपुल्स फोरम के मनोज कुमार सिंह और पत्रकार अशोक चौधरी सहित अनेक युवा संस्कृतिकर्मी और दिशा छात्र संगठन एवं नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ता मौजूद थे।

बिगुल पर साम्प्रदायिक फासीवादी ताक़तों का यह हमला बेहद स्वभाविक है। देश के मेहनतकश अवाम, प्रगतिशील, क्रान्तिकारी विचारों के प्रति और सच्चाई के प्रति हमारी प्रतिबद्धता का यह प्रमाण पत्र है। इससे हमारा संकल्प और दृढ़ हुआ है और यह भरोसा भी कि हम सही राह पर हैं। उन्हें बौखलाना ही चाहिए जो सच्चाई का ताप बर्दाश्त नहीं कर सकते। जो चाहते हैं कि अँधेरा कायम रहे। यथास्थिति और जड़ता न टूटे। इन हमलावरों का कुनबा उसी हिटलरी बिरादरी को अपना आदर्श मानता है जिनका मानना है कि एक झूठ को सौ बार बोलो तो वह सच हो जायेगा। जोर से झूठ का हल्ला मचाकर सच्चाई को दबा दो। लेकिन वे शायद यह नहीं जानते कि सच्चाई को तो ख़ून की नदियों में भी नहीं डुबाया जा सकता।

'बिगुल' टीम अपने पाठकों को विश्वास दिलाती है कि हम ऐसे हंगामों और धमकियों से डरने वाले नहीं हैं। हम अपना अभियान जारी रखेंगे और जोर-शोर से, और अधिक धारदार ढंग से। हम जानते हैं कि बिगुल के सभी पाठक हमारे साथ हैं।

पत्रकारिता का व्यवसाय, जो किसी समय बहुत ऊँचा समझा जाता था, आज बहुत ही गन्दा हो गया है। ये लोग एक-दूसरे के विरुद्ध बड़े मोटे-मोटे शीर्षक देकर लोगों की भावनाएँ भड़काते हैं और परस्पर सिर-फुटौव्वल करवाते हैं। एक-दो जगह ही नहीं, कितनी ही जगहों पर इसलिए दंगे हुए हैं कि स्थानीय अख़बारों ने बड़े उत्तेजनापूर्ण लेख लिखे हैं। ऐसे लेखक, जिनका दिल व दिमाग ऐसे दिनों में भी शान्त रहा हो, बहुत कम हैं।

अख़बारों का असली कर्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता निकालना, साम्प्रदायिक भावनाएँ हटाना, परस्पर मेल-मिलाप बढ़ाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता बनाना था; लेकिन इन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य अज्ञान फैलाना, संकीर्णता का प्रचार करना, साम्प्रदायिक बनाना, लड़ाई-झगड़े करवाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता को नष्ट करना बना लिया है। यही कारण है कि भारतवर्ष की वर्तमान दशा पर विचार कर आँखों से रक्त के आँसू बहने लगते हैं और दिल में सवाल उठता है कि 'भारत का बनेगा क्या?'

भगतसिंह

क्रान्तिकारी जनसंघर्ष ही एकमात्र रास्ता

(पेज 1 से आगे)

बहुत प्यारा है। जैसे जर्मनी में मज़दूरों की सभाओं में हमला बोलने वाले और मज़दूर नेताओं की हत्याएँ करने वाले 'तूफ़ानी दस्ते' का सरगना हिटलर जर्मन पूँजीपतियों का दुलारा बन गया था।

वर्ष 2002 के जनसंहार के बाद मोदी के 'जीवन्त गुजरात में मुसलमानों की क्या जगह है? वे पूरी तरह हाशिये पर धकेल दिये गये हैं। उनके मानवीय स्वाभिमान को पूरी तरह कुचलकर उनकी दशा बिल्कुल वैसी बना दी गयी है जैसी भेड़ियों के आगे सहमें हुए मेमनों की होती है। अहमदाबाद, सूरत और बड़ौदा जैसे शहरों में ज्यादातर गरीब मेहनतकश मुसलमान आबादी ऐसी घनी बस्तियों में सिमटा दी गयी है जहाँ बिजली, पानी, सड़क जैसी बुनियादी सुविधाएँ तक ढंग से मयस्सर नहीं है। वे बिल्कुल उसी तरह दोयम दर्जे के नागरिक बना दिये गये हैं जिसकी संकल्पना गुरु गोलवलकर ने की थी। भले ही काग़ज़ी तौर पर उनसे नागरिकता नहीं छीनी गयी है लेकिन व्यवहारतः वे मोदी के हिन्दू राज्य के अ-नागरिक बन गये हैं। यह अनायास नहीं है कि संघ परिवार अपने लाडले स्वयंसेवक की कामयाबी पर फूला नहीं समा रहा है। 'हिन्दुत्व' और 'विकास' का यही वह एजेण्डा है जिसे भगवा बिरादरी पूरे देश में आगे बढ़ाना चाहती है।

गुजरात चुनाव में नरेन्द्र मोदी की दुबारा जीत अप्रत्याशित नहीं है। वर्ष 2002 में हुए राज्य प्रायोजित जनसंहार के बाद जिस तरह गुजरात की आम जनता का साम्प्रदायिक बँटवारा हुआ वह केवल तभी दूर हो सकता था जब वर्गीय आधार पर जन गोलबन्दी की कोई मुहिम वहाँ आगे बढ़ती। लेकिन गुजरात में क्रान्तिकारी वर्गीय राजनीति करने वाली ताकतों की लगभग गैरहाज़िरी से यह मुहिम वहाँ नहीं शुरू हो सकी। सी.पी.आई. और सी.पी.आई. (एम.) जैसी संसदीय वामपन्थी पार्टियों का भी वजूद वहाँ नाममात्र ही है। और जो है वह भी कांग्रेस की तथाकथित धर्मनिरपेक्षता का पिछलग्गू बनने से ज्यादा नहीं है। मोदी के ख़िलाफ़ तथाकथित सोसायटी के धर्मनिरपेक्ष कुलीनों की जो क़ानूनी कवायदें होती रहीं उनका कोई जमीनी असर नहीं और वे पूँजीवादी लोकतंत्र के विधि-विधान के प्रति ऐसी उम्मीदों की कवायदें बनकर रह गयीं जिसका कोई ठोस आधार नहीं है। पिछले साठ साल के अनुभवों से गुजरने के बाद अब आम आबादी का बड़ा हिस्सा भी यह समझने लगा है कि दुनिया का यह तथाकथित सबसे बड़ा लोकतंत्र भी पूँजीवादी लोकतंत्र ही है जिसका कुल जमा-निचोड़ होता है अमीर-उमरा लोगों के लिए जनवाद और आम मेहनतकश जनता के ऊपर तानाशाही। इस पूँजीवादी लोकतंत्र के प्रति जनता की अनास्था जितनी बढ़ेगी सच्चे लोकतंत्र के लिए उसकी जद्दोजहद उतनी ही आगे बढ़ेगी। कहने का मतलब यह नहीं कि जनता को न्याय दिलाने के क़ानूनी तरीकों को पूरी तरह ताक़ पर रख दिया जाना चाहिए लेकिन पूँजीवादी जनवाद के प्रति बेजा मोह में भी नहीं पड़ना चाहिए। यह बेजा मोह क्रान्तिकारी विकल्पों की तलाश करने और जनसंघर्षों को आगे बढ़ाने में रुकावट बनकर खड़ा हो जाता है।

कांग्रेसी धर्मनिरपेक्षता का पिलपिलापन

गुजरात विधानसभा चुनाव ने कांग्रेस धर्मनिरपेक्षता के पिलपिलेपन को भी एक बार फिर से उजागर किया है। नेहरू की 'सर्वधर्म समभाव' पर आधारित धर्मनिरपेक्षता 'आक्रामक हिन्दुत्व' की चुनावी मुहिम के सामने मिमियाती नजर आयी। नरेन्द्र मोदी ने चुनाव प्रचार की शुरुआत 'विकास' के मुद्दे को उछालकर की थी। कांग्रेस के चुनावी रणनीतिकार इस मुद्दे पर मोदी को घेरने में इसलिए कामयाब नहीं हो सकते थे क्योंकि गुजरात में 'विकास' के उसी मॉडल को अमली जामा पहनाया जा रहा है जिसे आगे बढ़ाने वाली खुद कांग्रेस ही है। इस सवाल पर देशी-विदेशी पूँजीपति ही नहीं स्वयं मनमोहन सिंह और चिदम्बरम मोदी को पास होने का प्रमाण पत्र दे चुके हैं। इसलिए सोनिया गाँधी ने मोदी को 'मौत का सौदागर' कहकर कट्टर हिन्दुत्व विरोधी वोटों को अपने पक्ष में करने की सोची। लेकिन मोदी के पलटवार ने कांग्रेसी चुनावी मुहिम को बचाव की मुद्रा के पीछे धकेल दिया। कांग्रेस ने यह मुद्रा उदार हिन्दु वोटों को फिसलने से बचाने के लिए किया। लेकिन मुस्लिम वोटों को हर हाल में अपनी झोली में गिरने के लिए ऐन चुनाव के बीच जो सस्ती पोस्टरबाजी की उससे उदार हिन्दू भी मोदी के पक्ष में चले गये। राहुल गाँधी का रोड शो भी कोई करिश्मा नहीं कर सका। भगवा ब्रिगेड के जिन असन्तुष्टों से चुनावी लाभ कमाने की उम्मीद कांग्रेस ने पाली थी वे भी औंधे मुँह जा गिरे। आदिवासी वोटों को भी कांग्रेस मोदी से नहीं छीन सकी। उसके दलित वोटों में भी जहाँ-तहाँ बहुजन समाज पार्टी ने सेंध मार दी। मायावती की 'सोशल इंजीनियरिंग' गुजरात में बसपा को एक भी सीट नहीं दिला सकी लेकिन कई कांग्रेसी सीटों को मोदी की झोली में जरूर डाल दिया। कांग्रेस को केवल मध्य गुजरात में ही थोड़ी बहुत कामयाबी मिली जहाँ मुसलमान आबादी ने भारी संख्या में उसके पक्ष में मतदान किया। यह भी मोदी के ख़िलाफ़ नकारात्मक वोटिंग ही थी न कि कांग्रेसी धर्मनिरपेक्षता को सकारात्मक समर्थन। इन तमाम वजहों के मद्देनजर मोदी की वापसी पहले से तय थी। इन्हीं आधारों पर चुनावी गुणा-भाग का हिसाब लगाने वाले मीडिया-प्रायोजित चुनाव-पूर्व सर्वेक्षणों ने भी मोदी की वापसी की भविष्यवाणी कर दी थी।

गुजरात में भगवा ब्रिगेड की कामायाबी और कांग्रेसी राजनीति का दिवाला पिटने की वजहें गुजरात की विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक संरचना और स्वयं कांग्रेस के राजनीतिक इतिहास में भी हैं। गुजरात में औपनिवेशिक काल में जिस पूँजीवाद की बुनियाद पड़ी उसमें हमेशा ही औद्योगिक पूँजी के ऊपर वाणिज्यिक पूँजी का वर्चस्व रहा है। इतिहास का यह सच हम सभी जानते हैं कि जनवाद उद्योग की ज़मीन पर पनपता है और वाणिज्यिक (व्यापारिक) पूँजी की ज़मीन पर निरंकुशशाही की बेल फलती-फूलती है। सूरत और अहमदाबाद में, जहाँ औद्योगिक मज़दूर वर्ग की तादाद सबसे ज्यादा थी, वहाँ भी मज़दूर आन्दोलन के ऊपर गाँधी के मज़दूर-महाजन संघ की वर्ग सहयोगवादी सोच ज्यादा प्रभावी थी। किसान आबादी के ऊपर भी गाँधी से ज्यादा सरदार वल्लभ भाई पटेल की अगुवाई में कांग्रेस के भीतर के दक्षिणपन्थी धड़े की विचारधारा का ज्यादा प्रभाव था। 1925 में बारदोली सत्याग्रह भी वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में शुरू हुआ था जिसे आगे चलकर गाँधी ने समर्थन और नेतृत्व दिया था। 'गाँधी के गुजरात को क्या हो गया है' कहने वालों को इस तथ्य की ओर ध्यान देना चाहिए कि गुजरात के किसानी समाज पर राष्ट्रीय आन्दोलन के दौर में भी गाँधी का प्रभाव देश के कई अन्य क्षेत्रों से कम था और मज़दूर वर्ग पर जो प्रभाव था वह मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी चेतना को कुन्द करने वाला था। 1947 के बाद गुजरात में जो पूँजीवादी विकास हुआ वह भी गुजरात के समाज में जनवाद के बजाय निरंकुशशाही के मूल्यों को ही मजबूत बनाने वाला था। गुजरात की अर्थव्यवस्था में व्यापारिक पूँजी का पहले से कायम वर्चस्व भी बना रहा और गाँवों में भी पूँजीवादी विकास के फलस्वरूप पटेल आदि मध्य जातियों के बीच से जो नया कुलक वर्ग पैदा हुआ उसने निरंकुशता को नयी ज़मीन मुहैया करायी। गुजरात में एक खाता-पीता शहरी मध्य वर्ग भी मोदी की साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति के एक मजबूत सामाजिक आधार के रूप में विकसित हुआ है। यहाँ यह तथ्य भी गौरतलब है कि इन्दिरा गाँधी के समय में कांग्रेस में जो विभाजन हुआ था उसमें गुजरात में इन्दिरा समर्थक इण्डिकेट खेमे के बजाय मोरारजी देसाई समर्थक 'सिण्डिकेट' खेमे का ही वर्चस्व कायम हुआ था। कहने का मतलब यह कि गुजरात में राष्ट्रीय आन्दोलन के समय से कांग्रेसी राजनीति का 'दक्षिणपन्थी' खेमा ही हमेशा वर्चस्व में रहा है। गुजरात चुनावों में मोदी के ख़िलाफ़ बगावत करने वाले भाजपा नेताओं को कांग्रेस द्वारा आसानी से स्वीकार लेना और उन्हें टिकट देना भी इसी सच्चाई का प्रमाण है। गुजरात में कांग्रेस के इस इतिहास को देखते हुए 2002 जनसंहार में कांग्रेस के कुछ नेताओं की भी सक्रिय भागीदारी पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

चुनावी वामपन्थियों का नपुंसक फ़ासीवाद विरोध

गुजरात में कांग्रेस राजनीतिक के इस चरित्र को देखते हुए यह उम्मीद करना ही बेमानी था कि मोदी के आक्रामक हिन्दुत्व की राजनीति और गुजराती समाज के साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की मौजूदा स्थिति में चुनावी राजनीति के दायरे में साम्प्रदायिक फ़ासीवाद को कोई चुनौती दी जा सकती है। गुजरात चुनाव के नतीजे आने के बाद माकपा महासचिव प्रकाश करात अपनी पार्टी के मुखपत्र 'पीपुल्स डेली' में विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए कांग्रेस के प्रति शिकायती अन्दाज़ में फरमाते हैं कि उसने भगवा ब्रिगेड के ख़िलाफ़ दृढ़ साम्प्रदायिकता विरोधी चुनावी रणनीति नहीं अख्तियार की।

सवाल यह है कि कांग्रेस से आप अभी तक यह उम्मीद ही क्यों पाले हुए हैं? इसलिए क्योंकि आपका मेहनतकश अवाम की संग्रामी गोलबन्दी में भरोसा नहीं है। आप और आपकी समूची चुनावी वामपन्थी बिरादरी जनता के क्रान्तिकारी संघर्षों को छोड़कर पूँजीवादी संसदीय जनवाद की चौहद्दी को स्वीकार कर चुकी है। आप लोग भले ही चुनावों में जाति और धर्म के कार्डों का खुला खेल न खेलें लेकिन आप लोगों की धर्मनिरपेक्षता भी नेहरूवादी धर्म-निरपेक्षता का पर्याय बनकर रह गयी है। यह अनायास नहीं है कि साम्प्रदायिक फ़ासीवाद का मुकाबला करने और भाजपा को सत्ता से दूर रखने के नाम पर आप केन्द्र में कांग्रेस की अगुवाई वाली उस सरकार का समर्थन कर रहे हैं जिसकी धुर पूँजीपरस्त आर्थिक नीतियों के ख़िलाफ़ आप संघर्ष करने का दम भरते नजर आते हैं।

साम्प्रदायिक फ़ासीवाद से संघर्ष करने के नाम पर सी.पी.एम. और सी.पी.आई. जैसी तमाम चुनावी वामपन्थी पार्टियाँ इन ताकतों को उसी तरह वस्तुगत रूप से मदद पहुँचा रही हैं जिस तरह यूरोप की सामाजिक जनवादी पार्टियों ने अपनी समझौता-वादी नीतियों से हिटलर और मुसोलिनी को मदद पहुँचायी थी। भारत की ये नव सामाजिक जनवादी पार्टियाँ भी अपनी समझौतापरस्ती और जनता की लड़ाइयों को पूँजीवादी जनवादी-क़ानूनी दायरों में सिकोड़ देने की रणनीति और कार्यनीति के चलते हर निर्णायक मोड़ों पर कमज़ोर कर देती हैं और शक्ति सन्तुलन का पलड़ा फ़ासीवादी शक्तियों के पक्ष में झुकाती रहती हैं।

पिछले डेढ़ दशकों के दौरान इन चुनावी वामपन्थियों का साम्प्रदायिक फ़ासीवाद विरोध की उतना ही मरियल और रस्मी रहा है जितना उदारीकरण की नीतियों का विरोध। साम्प्रदायिक फ़ासीवाद से संघर्ष करने के नाम पर महज औपचारिक रैलियों, प्रदर्शनों या महानगरीय कुलीन बुद्धिजीवियों के बीच कुछ सेमिनारों या सांस्कृतिक आयोजनों से अधिक इन्होंने कुछ नहीं किया। क्या हम यह नहीं देख रहे हैं कि उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के विरोध में इनकी रस्म अदायगी और कर्मकाण्डी विरोधों से तंग मज़दूर वर्ग की राजनीतिक क्रियाशीलता मन्द पड़ती जा रही है उसकी राजनीतिक चेतना भोंथरी होती जा रही है और नतीजतन उसका एक बड़ा हिस्सा 'इण्टक' ही नहीं संघ परिवार के भारतीय मज़दूर संघ के पीछे जा खड़ा हो रहा है। इतिहास गवाह है कि ऐसी पार्टियाँ अपने पीछे चलने वाले मेहनतकशों को और खुद ही अपनी कतारों को फासिस्ट दमन के सामने निहत्था-निश्शस्त्र छोड़ देती रही हैं। हमारे देश में भी हम यही होते हुए देख रहे हैं।

मोदी को चुनौती न दे पाने के लिए प्रकाश करात द्वारा कांग्रेस रणनीति को कोसना और उसके नेतृत्व को उलाहना देना संसदीय वामपन्थियों की नपुंसकता का ही प्रमाण है। साथ ही अपनी पार्टी कतारों को छिटकने से बचाने के लिए की जाने वाली बौद्धिक कवायद भी है। ऊपर बताये गये 'पीपुल्स डेली' के लेख में प्रकाश करात लफ्फाजी करते हुए लिखते हैं, "साम्प्रदायिक शक्तियों के ख़िलाफ़ संघर्ष तभी आगे बढ़ाया जा सकता है जब मोदी सरकार की बेलगाम दक्षिणपन्थी आर्थिक नीतियों के शिकार लोगों की फौरी समस्याओं को उठाया जाये। किसानों, मज़दूरों आदिवासियों के अधिकारों के लिए और शहरी गरीबों को उजाड़ने एवं किसानों की बेदखली के ख़िलाफ़ संघर्षों को कारगर ढंग से नहीं संगठित किया जा सका।" करात साहब यहाँ घुमा-फिराकर, पानी मिलाकर वर्गीय गोलबन्दी जैसी कोई बात कहना चाहते हैं। लेकिन वह फिर तुरन्त इस संघर्ष को संगठित करने में गुजरात में अपनी पार्टी की कमज़ोरी की मजबूरी बताते हुए फिर कांग्रेस को उलाहना देने लगते हैं। कांग्रेस ने भी यह संघर्ष क्यों नहीं संगठित किया? इसका जवाब भी अगली ही लाइन में करात जी दे डालते हैं "...उदारीकरण की नीतियों की वकालत करने वाली कांग्रेस भाजपा सरकार की नीतियों का डटकर विरोध कर ही नहीं सकती थी।" वाह करात साहब कितने समझदार हैं। वह सब कुछ समझते हैं। इसलिए तो वह गोरखपाण्डे की कविता की तर्ज पर 'समझदारों का गीत' गा रहे हैं। ताकि उनके काडर न बहकने पायें। कोई उनसे पूछे कि कांग्रेसियों की धोती की खूँट पकड़कर धर्मनिरपेक्षता की हुआँ-हुआँ करना छोड़कर आप लोग स्वयं ही वर्गीय गोलबन्दी करने का काम डटकर शुरू क्यों नहीं कर देते।

साम्प्रदायिक फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी गोलबन्दी करो!

गुजरात में मोदी की जीत फौरी तौर पर गुजरात की मेहनतकश जनता की हार है। साथ ही यह देश के क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन की कमज़ोरी की भी देन है। लेकिन मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी अग्रदलों को प्रकाश करात जैसे नकली वामपन्थियों की तरह पूँजीवादी चुनावी पार्टियों से कोई झूठी नहीं उम्मीद पालनी चाहिए। साम्प्रदायिक फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ कोई चुनावी मोर्चा कारगर नहीं हो सकता। आज देश और दुनिया में साम्प्रदायिक फ़ासीवाद और हर तरह के धार्मिक कट्टरपन्थ की राजनीति भूमण्डलीकरण की आर्थिक कट्टरपन्थी नीतियों की ज़मीन पर खड़ी है। हमारे देश में आज सभी चुनावी पार्टियाँ खुलकर या छिपे रूप में भूमण्डलीकरण की इन आर्थिक नीतियों की न केवल समर्थक हैं वरन् जहाँ-जहाँ इनकी सरकारें कायम हैं वहाँ वे लाठी-डण्डे के ज़ोर पर लागू भी कर रही हैं। सिंगूर और नन्दीग्राम ने चुनावी वामपन्थियों के चेहरों का मुखौटा भी पूरी तरह उघाड़ दिया है। देश में क्रान्तिकारी राजनीतिक शक्तियों के बिखराव और कमज़ोरी को देखते हुए भले ही यह दूरगामी लक्ष्य हो लेकिन साम्प्रदायिक फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ एक क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चा ही एकमात्र कारगर विकल्प है। यह मज़दूर वर्ग की संग्रामी गोलबन्दी के इर्द-गिर्द जनता के अन्य वर्गों के साथ बना संयुक्त मोर्चा होगा जो हर किस्म के फ़ासीवाद की जननी पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ केन्द्रित होगा।

(पेज 7 पर जारी)

टेलर प्रणाली–मशीन द्वारा आदमी को दास बनाया जाना

लेनिन

पूँजीवाद क्षण भर को भी गतिरुद्ध नहीं रह सकता। उसे सतत आगे बढ़ते रहना चाहिए। हमारे दौर जैसे संकटों के दौर में अधिक से अधिक तीखी बन जानेवाली होड़ उत्पादन की लागत को घटाने की अधिकाधिक नई तरकीबें ईजाद करने की माँग करती है। लेकिन पूँजी का प्रभुत्व इन सारी तरकीबों को मज़दूरों के ऊपर शोषण के उपकरणों में परिवर्तित कर देता है।

टेलर प्रणाली एक ऐसी ही तरकीब है।

इसी प्रणाली के पक्षधरों ने हाल में ही अमरीका के अन्दर ऐसे तरीक़े इस्तेमाल किये।

एक मज़दूर की बाँह से बिजली की बत्ती संलग्न कर दी गई। मज़दूर की गतिविधि के फ़ोटो लिए गए और बत्ती की गतिविधि का अध्ययन किया गया। कुछ गतिविधियाँ "अनावश्यक" पाई गईं और मज़दूर को उन्हें बचाने के लिए, यानी आराम के लिए एक क्षण भी खोए बग़ैर अधिक तीव्रता के साथ काम करने के लिए, मजबूर किया गया।

नए कारख़ानों की इमारतों का विन्यास इस ढंग से आयोजित किया जाता है कि कारख़ाने को सामग्री पहुँचाने में, उन्हें एक विभाग से दूसरे तक ले जाने में और तैयार उत्पाद को भेजने में क्षण भर भी नष्ट नहीं होता। श्रेष्ठतम मज़दूरों के काम के अध्ययन तथा उसकी तीव्रता-वृद्धि के लिए, यानी मज़दूरों से "जल्दी काम कराने" के लिए व्यवस्थित ढंग से सिनेमा का उपयोग किया जाता है।

मिसाल के लिए, पूरे दिन के दौरान एक मिस्त्री के काम की फ़िल्म तैयार की गयी। उसकी गतिविधियों का अध्ययन करने के बाद उसे एक इतना ऊँचा बेंच दिया गया, जिससे मिस्त्री के लिये झुकने में समय नष्ट करने की जरूरत नहीं रह गई। उसे मदद के लिए एक लड़का दिया गया, जिसे मशीन के हर हिस्से को एक निश्चित और अधिकतम दक्षतापूर्ण ढंग से उठाकर देना होता था। थोड़े ही दिनों में मिस्त्री प्रस्तुत क़िस्म की मशीन को जोड़ खड़ा करने का काम पहले की अपेक्षा **चौथाई** समय में करने लगा!

श्रम की उत्पादनशीलता में कैसी प्रकाण्ड उपलब्धि है! ...लेकिन मज़दूर का वेतन चौगुना नहीं, बल्कि अधिक से अधिक डेढ़ गुना ही बढ़ाया जाता है और वह भी **सिर्फ़ थोड़े समय के लिए।** ज्योंही मज़दूर नई प्रणाली के आदी हो जाते हैं, त्योंही उनका वेतन घटाकर पहले के स्तर पर पहुँचा दिया जाता है। पूँजीपति प्रकाण्ड मुनाफ़ा हासिल करता है, लेकिन मज़दूर पहले की अपेक्षा चौगुनी अधिक मशक़्क़त करते हैं और पहले की अपेक्षा चौगुनी तेज़ी से अपने स्नायु-तन्तुओं तथा मांसपेशियों का क्षय करते हैं।

नए नियुक्त हुए मज़दूरों को कारख़ाने के सिनेमा में ले जाया जाता है, जहाँ उसे काम की "आदर्श" पूर्ति प्रदर्शित की जाती है और उसे उस आदर्श के "स्तर तक पहुँचने" को विवश किया जाता है। एक हफ़्ते बाद उसे सिनेमा में ख़ुद उसका काम दिखाया जाता है और "आदर्श" के साथ उसकी तुलना की जाती है।

ये सारे व्यापक सुधार मज़दूरों के **ख़िलाफ़** किए जाते हैं, क्योंकि वे मज़दूरों के और अधिक उत्पीड़न तथा शोषण का कारण बनते हैं। इसके अलावा श्रम का यह बुद्धिसंगत तथा कार्यक्षम संगठन **प्रत्येक कारख़ाने तक ही** सीमित रहता है।

स्वभावतः विचार पैदा होता है कि पूरे समाज में श्रम के संगठन की बाबत क्या हो रहा है? पूरे के पूरे पूँजीवादी उत्पादन के असंगठित तथा विश्रृंखलित चरित्र के कारण इस समय श्रम की कितनी विपुल मात्रा नष्ट होती है! बाज़ार की आवश्यकताओं के अज्ञात होने की सूरत में सैकड़ों-खरीदारों और दलालों के हाथ से होकर कच्चे माल के कारख़ाने तक पहुँचने में कितना समय नष्ट होता है! केवल समय ही नहीं, बल्कि असल उत्पाद भी नष्ट और क्षतिग्रस्त होते हैं। फिर ढेरों ऐसे छोटे दलालों की मार्फ़त उपभोक्ताओं तक तैयार उत्पादों को पहुँचाने में नष्ट होनेवाले समय और श्रम की बाबत क्या कहा जाए, जो भी अपने ग्राहकों की जरूरतें नहीं जान सकते और न केवल ढेरों अनावश्यक दौड़धूप करते हैं, बल्कि ढेरों अनावश्यक खरीदारियाँ, यात्राएँ इत्यादि भी करते हैं!

पूँजी कारख़ाने के भीतर ही मज़दूरों के शोषण तथा अपने मुनाफ़े में वृद्धि के प्रयोजन से श्रम का संगठन और विनियोजन करती है। लेकिन समग्र, सामाजिक उत्पादन में विश्रृंखलता क़ायम है और बढ़ रही है, जिसके फलस्वरूप जब संचरित मालों को खरीरदार नहीं मिल पाते, तब संकट पैदा होता है और रोज़गार न पा सकने के कारण लाखों मज़दूर भूखों मरते हैं।

टेलर प्रणाली अपने प्रवर्तकों के अनजाने और अनचाहे ही उस समय के लिए ज़मीन तैयार कर रही है, जब सर्वहारा वर्ग सम्पूर्ण सामाजिक उत्पादन को अपने हाथ में ले लेगा और सम्पूर्ण सामाजिक श्रम के समुचित संगठन तथा विनियोजन के लिए अपनी मज़दूर-कमिटियाँ नियुक्त करेगा। बड़े पैमाने का उत्पादन, मशीनें, रेलवे, टेलीफ़ोन ये सारी सुधिवाएँ ऐसे हज़ारों सुयोग प्रस्तुत करती हैं कि संगठित मज़दूरों के काम के समय को तीन-चौथाई कम किया जा सके और आज की अपेक्षा उन्हें चौगुना अधिक ख़ुशहाल बनाया जा सके।

मज़दूर-कमेटियाँ मज़दूर-यूनियनों की सहायता से पूँजी की गुलामी से सामाजिक श्रम के मुक्त हो जाने पर उसके युक्तिसंगत संगठन के इन उसूलों को लागू करने में समर्थ होंगी।

(ब्ला.इ.लेनिन, संग्रहीत रचनाएँ, पाँचवाँ रूसी संस्करण, खण्ड 24, पृ. 369-371)

...समृद्धि के टापू हुए और जगमग

(पेज 1 से आगे)

में इस विरोधाभास को कुछ यूँ व्यक्त किया है :

जूठी हड्डी फेंककर औ कुत्तों को टेर।
अपने-अपने महल में सोये पड़े कुबेर॥

आज देश में एक लाख अरबपति धनकुबेर हैं जो इस देश के करोड़ों मेहनतकश लोगों की हड्डियाँ और मांस निचोड़ने में लगे हैं। ये अपने महलों में चैन से सो सकें इसके लिए तमाम जनप्रतिनिधि संसद और विधान सभाओं में क़ानून पास कर रहे हैं। छँटनी- तालाबन्दी और तमाम तथाकथित विकास परियोजनाओं के नाम पर करोड़ों लोग अपनी रोज़ी-रोटी, जगह-जमीन से बेदखल किये जा रहे हैं और आवाज़ उठाने पर उन्हें लाठियाँ-गोलियाँ मिल रही हैं। कलिंगनगर, सिंगूर, नन्दीग्राम तो देशी-विदेशी पूँजी की बर्बरता के प्रतीक बन चुके हैं लेकिन तमाम औद्योगिक क्षेत्रों में मज़दूर रोज़-रोज़ जिन बर्बरताओं के शिकार हो रहे हैं उनकी खबरें भी लोगों तक नहीं पहुँचने पातीं। मुनाफे और बाजार पर आधारित पूँजीवादी खेती की मार से देश भर में पचास हज़ार से ज्यादा छोटे-मँझोले किसान आत्महत्याएँ कर चुके हैं। अकेले महाराष्ट्र में 1995 के बाद से 32,000 किसान आत्महत्याएँ कर चुके हैं। यह उस महाराष्ट्र की तस्वीर है जिसकी राजधानी देश की व्यापारिक राजधानी कही जाती है। इसी मुम्बई में कुल अरबपतियों की एक चौथाई आबादी और सभी दस बड़े खरबपति रहते हैं। इसी मुम्बई में दुनिया की सबसे बड़ी झुग्गी बस्ती 'धारावी' भी है जो पूँजीवादी समृद्धि के शिखरों को मुँह चिढ़ाती रहती है। देश में अमीरी और गरीबी के बँटवारे का एक और रुपक है यह पूँजीवादी विकास के सरपट भागते रथ के पहियों के नीचे दबाये-कुचले जा रहे लोगों के बारे में, देश की संसद और विधानसभाओं में आवाज़ें भी उठती हैं तो प्रमुख चिन्ता यही रहती है कि इनके असन्तोष से कैसे निपटा जाये। उनकी यह चिन्ता देश की आन्तरिक सुरक्षा पर खतरा बन जाती है और मंत्री एवं नौकरशाह इससे निपटने की चिन्ताओं में डूब जाते हैं। यानी, इस देश के भाग्य-विधाताओं की बुनियादी चिन्ता यही रहती है कि धनकुबेरों को जनअसन्तोष की दुश्चिन्ताओं से कैसे उबारा जाये ताकि उन्हें चैन की नींद नसीब हो सके। बीते साल के आखिरी महीने में आन्तरिक सुरक्षा प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में राजधानी दिल्ली में एक विशेष बैठक बुलायी गयी और संसद में बहस भी हुई। बैठक में सशस्त्र बलों को और मजबूत बनाने, खुफिया तंत्र और संचार-परिवहन तंत्र को मजबूत बनाने पर फैसले लिए गये लेकिन संसद के शीतकालीन सत्र में सूचीबद्ध होने के बावजूद महँगाई पर चर्चा के लिए माननीय सांसदों को समय नहीं मिल सका। हमेशा की तरह संसद के शीतकालीन सत्र के दौरान हंगामे और गुलगपाड़े में जनता की गाढ़ी कमाई के 446 करोड़ रुपये स्वाहा हो गये। लोकसभा और राज्यसभा में मिलाकर कुल 37 घण्टे इसकी भेंट चढ़ गये। मालूम हो कि संसद की एक मिनट की कार्रवाई पर लगभग 16 लाख रुपये खर्च होते हैं। असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा के नाम पर विधेयक लाने के लिए यूपीए सरकार बनने के बाद से ही ढपोरशंखी राग अलाप रही है। सरकार का कार्यकाल बीतने को है लेकिन अभी तक इस विधेयक के प्रावधानों को ही अन्तिम रूप नहीं दिया जा सका है। अभी संसद की एक स्थायी समिति इसके तैयार किये गये पहले प्रारूप पर विचार कर रही है।

जनअसन्तोष की आवाज़ कुचलने के लिए सरकारों द्वारा बनाये जा रहे नये-नये क़ानूनों के सिलसिले की कड़ी में महाराष्ट्र के 'मकोका' की तर्ज पर उत्तर प्रदेश में भी संगठित, अपराधों को रोकने के नाम पर 'यू पी कोका' क़ानून लागू कर दिया गया है। यू पी कोका (यूपी कंट्रोल ऑफ आरगनाइज्ड क्राइम ऐक्ट) यानी संगठित अपराध नियंत्रक क़ानून के तहत सरकार या किसी फैक्टरी मालिक के ख़िलाफ़ संगठित आवाज़ उठाने को भी संगठित अपराध घोषित किया जा सकता है। उधर छत्तीसगढ़ में भी 'छत्तीसगढ़ विशेष जनसुरक्षा क़ानून' 2005 से ही लागू है जिसके तहत सी.पी.आई. (माओवादी) से सम्बन्ध रखने के जुर्म में, जिसे अब तक प्रभावित भी नहीं किया जा सका है, नागरिक अधिकार कार्यकर्ता डॉ. विनायक सेन को सुप्रीम कोर्ट ने भी जमानत नहीं दी। सुप्रीम कोर्ट साल खत्म होते-होते भारी संख्या में दाखिल होने वाली जनहित याचिकाओं पर भी नाराजगी जाहिर कर चुका है। दरअसल, जनहित याचिकाएँ पिछले कुछ सालों में भ्रष्ट नेताओं और सरकारों के लिए काफ़ी मुश्किलें पैदा करने लगी थीं। अब जनहित याचिकाओं के दायरे को फिर से परिभाषित करने की बात सुप्रीम कोर्ट कर रहा है जिससे सरकारों और विधायिकाओं के काम में न्यायपालिका जरूरत से ज्यादा टाँग न अड़ाये। यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। पूँजीवादी जनवाद के दायरे में जनअसन्तोष को नियंत्रित करने के लिए समय-समय पर जो रियायतें दी जाती हैं वे स्वयं व्यवस्था के लिए और बड़ी मुसीबत बनने लगती हैं। जनहित याचिकाओं के साथ यही हो रहा है।

विकास और विनाश के इस दस्तूरी पूँजीवादी द्वन्द्व से गुजरकर नया साल हमारे सामने है। वैसे भी नये साल का आना एक आम मेहनतकश आदमी के लिए कैलेण्डर की तारीख बदलने से ज्यादा मायने नहीं रखता। फिर भी नया साल शुरू होने के मौके पर कुछ नया संकल्प लेने का जो दस्तूर है उसके मुताबिक 'बिगुल' टीम पाठकों को भरोसा दिलाती है कि देश के मेहनतकशों की पीड़ा-व्यथा, उनके सपनों-उम्मीदों की आवाज़ और बुलन्द करने और मुक्ति के महास्वप्न को साकार करने की दिशा में अपने प्रयासों को हम और तेज गति से आगे बढ़ायेंगे पहले से अधिक सर्जनात्मकता और ऊर्जस्विता के साथ! ●

क्रान्तिकारी जनसंघर्ष ही एकमात्र रास्ता

(पेज 6 से आगे)

जब यह रणनीतिक मोर्चा मजबूत होगा तभी इसकी अगुवाई कर रही क्रान्तिकारी पार्टी परिस्थिति विशेष में फ़ासीवाद के विरुद्ध कुछ बुर्जुआ और मध्यवर्गीय राजनीतिक शक्तियों के साथ भी कार्यनीतिक या रणकौशलात्मक मोर्चा बना सकती है।

यहाँ हमारा यह मतलब नहीं कि उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के विरुद्ध, राजसत्ता के दमन-उत्पीड़न या फ़ासीवाद के विरुद्ध एकजुट प्रतिरोध के लिए तात्कालिक रूप से सम्भव अधिकतम व्यापक साझा मोर्चे नहीं बनाने चाहिए। चाहे जिस पैमाने पर और जहाँ भी सम्भव हो ऐसे तात्कालिक मोर्चे जरूर बनाने चाहिए। ऊपर हमारा मतलब इस बात पर ज़ोर देना था कि साम्प्रदायिक फ़ासीवाद को फैसलाकुन शिकस्त कैसे दी जा सकती है।

हमें साम्प्रदायिक फ़ासीवाद के विरुद्ध फैसलाकुन संघर्ष के लिए जुझारू जन-एकजुटता की प्रक्रिया को तेज करना होगा। मज़दूर वर्ग की ठोस वर्गीय माँगों आर्थिक और राजनीतिक लड़ाई के साथ ही उसके बीच साम्प्रदायिक फ़ासीवाद विरोधी प्रचार एवं लामबन्दी भी निरन्तर करनी होगी। फ़ासीवाद के विरोध में व्यापक जन-एकजुटता कायम करने के लिए मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी हरावलों को ट्रेड यूनियन आन्दोलन के क्रान्तिकारी पुनरुत्थान तथा लोक अधिकार आन्दोलन, सर्वहारा सांस्कृतिक आन्दोलन, नारी आन्दोलन और छात्र-युवा आन्दोलन को व्यापक आधार पर क्रान्तिकारी ढंग से मज़दूर वर्ग के सहयोगी आन्दोलनों के रूप में विकसित करना होगा। ●

नारी सभा

राजसत्ता और पितृसत्ता की बर्बरताओं के ख़िलाफ़ स्त्री को खुद मजबूती से खड़े होना होगा

हमारे देश की प्रथम नागरिक एक स्त्री है। देश के सबसे बड़े प्रदेश उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री महिला है और देश की सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी की मुखिया भी एक महिला है। अनेक महिलाएँ अफसरशाही में ऊँचे पदों पर हैं। वे जज हैं, बैरिस्टर हैं, पायलट हैं, पुलिस फौज में भी हैं। कुछ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सी.ई.ओ. तक बन चुकी हैं। कॉलेजों-विश्वविद्यालयों में अच्छी खासी संख्या में लड़कियाँ दाखिला ले रही हैं। लेकिन ये उँगलियों पर गिने जा सकने वाले कुछ अपवाद भर है। इनके आधार पर देश में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में आये सुधारों के बारे में दावे करना उन त्रासदियों से जानबूझकर आँखें फेरना है जिनकी शिकार आज भी बहुसंख्यक स्त्रियाँ हैं। पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था और मूल्यों-मान्यताओं से रोज़-रोज़, क्षण-प्रतिक्षण अपमानित होने वाली स्त्रियों की त्रासदी की बात ही छोड़िये इक्कीसवीं सदी में आज भी स्त्री मध्ययुगीन बर्बरताओं के बीच खड़ी है। बदस्तूर बीते साल में भी इन बर्बरताओं की अनगिनत कहानियाँ रची गयीं जिनमें से कुछ ही मीडिया की सुर्खियाँ बन सकीं।

नन्दीग्राम में स्त्रियाँ राजसत्ता और पितृसत्ता दोनों की बर्बरताओं की शिकार बनीं। उनके ऊपर राजसत्ता की लाठियाँ भी बरसीं और माकपाई काडरों ने जघन्य बलात्कार किये। हर राजसत्ता अन्ततः पितृसत्ता होती है इसलिए जब जनता को आवाज़ उठाने की सजा दी जाती है, किसी कौम को दबाया-कुचला जाता है, सबक सिखाया जाता है तो स्त्रियों से बलात्कार किया जाता है उन्हें अपमानित किया जाता है। यह विजेता राष्ट्रों, कौमों या जातियों का सदियों से चला आ रहा दस्तूर है। किसी कौम को अपमानित करना हो तो उसकी स्त्रियों को अपमानित करो। पिछले दिनों असम राज्य के प्रमुख शहर गुवाहाटी में भी एक ऐसी ही घटना घटी जिसे सुन-पढ़कर किसी भी संवेदनशील मनुष्य का हृदय चीत्कार कर उठेगा।

बीते नवम्बर माह में गुवाहाटी की सड़कों पर एक आदिवासी किशोरी को तीन युवकों ने सार्वजनिक तौर पर निर्वस्त्र कर दिया। यह किशोरी करीब एक किलोमीटर तक निर्वस्त्र भागती रही। रास्ते भर सैकड़ों लोग उसे देखकर हँसी-ठट्ठा करते रहे। इतना ही नहीं, हर घटना को 'लाइव' दिखाने की होड़ मचाये खबरिया चैनलों के एक कैमरामैन ने भी उसे वस्त्र मुहैय्या कराने के बजाय 'जीवन्त घटनाक्रम' को कैमरे में कैद करने में ज्यादा दिलचस्पी दिखायी।

यह किशोरी दसवीं कक्षा की छात्रा थी और 'ऑल आदिवासी स्टूडेण्ट्स एसोसियेशन ऑफ असम' की ओर से आयोजित रैली में भाग लेने आयी थी। इस संगठन की माँग है कि 'चाय' नामक जनजाति को अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया जाये। असमिया मूलनिवासियों की इस आदिवासी समुदाय के प्रति नफरत और बर्बरता का आलम यह है कि प्रदर्शनकारी लोगों को असमिया युवाओं ने सड़कों पर घसीट-घसीट कर वहशियाना ढंग से मारा-पीटा और स्थानीय पुलिस मूकदर्शक बनी खड़ी रही।

राजसत्ता की बर्बरता का शिकार आम पुरुष मेहनतकश आबादी को भी होना पड़ता है लेकिन स्त्री के ऊपर यह कहर बनकर टूटती है। मणिपुरी स्त्रियों की त्रासद कहानी हम भूले नहीं होंगे जहाँ असम राइफल के जवानों ने मनोरमा नामक एक युवती के साथ जघन्य बलात्कार के बाद हत्या कर दी थी। हम मणिपुरी स्त्रियों की उस बेबसी को भी नहीं भूल सकते जब इस घटना के विरोध में दर्जनों स्त्रियों ने असम राइफल्स के मुख्यालय पर निर्वस्त्र होकर प्रदर्शन किया था। उन्होंने हाथ में जो बैनर ले रखे थे उस पर लिखा था, "असम राइफल्स के लोगो! आओ हमारा बलात्कार करो!"

राजसत्ता और पितृसत्ता की इस खौफनाक जुगलबन्दी के ख़िलाफ़ जब तक स्त्रियाँ स्वयं डटकर नहीं खड़ी होंगी तब तक हालात में बदलाव की उम्मीद करना बेकार है। क़ानूनों और अदालतों के सहारे अपनी गरिमा और वजूद को बचाने की बात सोचना खुद को छलावा देना है। क़ानून बनाने और लागू करने वाले हाथ भी पितृसत्ता के हाथ हैं और न्याय के आसन पर भी पितृसत्ता विराजमान है। राजसत्ता के ख़िलाफ़ लड़ाई में तो मेहनतकश स्त्रियों को मेहनतकश पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ना होगा लेकिन पितृसत्ता के ख़िलाफ़ लड़ाई तो आधी आबादी को खुद अपने बूते लड़नी होगी। इस लड़ाई में बहुत थोड़ी तादाद में उन पुरुषों का साथ मिल सकता है जो अपनी संवेदना के धरातल पर स्त्री की पीड़ा को महसूस करते हैं और विचार के धरातल पर स्त्री-पुरुष बराबरी और स्त्रियों की अस्मिता और उनकी मानवीय गरिमा की बहाली के हिमायती हैं।

• सुजाता

हमारी विरासत

साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज

भगतसिंह

शहीदेआज़म भगतसिंह का यह लेख 1928 में 'किरती' नामक पंजाबी पत्रिका में छपा था। यह क्रान्तिकारी चिन्तन की हमारी अमूल्य विरासत है। लेख में व्यक्त भगतसिंह के विचारों से स्पष्ट हो जाएगा कि क्यों साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतें आज इस विरासत पर हमले बोल रही हैं। यहाँ हम इस लेख का एक अंश प्रस्तुत कर रहे हैं।

सम्पादक

...लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की जरूरत है। गरीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जाएँगी और तुम्हें आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी।

जो लोग रूस का इतिहास जानते हैं, उन्हें मालूम है कि जार के समय वहां भी ऐसी ही स्थितियाँ थीं, वहाँ भी कितने ही समुदाय थे जो परस्पर जूत-पताँग करते रहते थे। लेकिन जिस दिन से वहाँ श्रमिक-शासन हुआ है, वहाँ नक्शा ही बदल गया है। अब वहाँ कभी दंगे नहीं हुए। अब वहाँ सभी को 'इनसान' समझा जाता है, 'धर्मजन' नहीं। जार के समय लोगों की आर्थिक दशा बहुत ही खराब थी, इसलिए सब दंगे-फसाद होते थे। लेकिन अब रूसियों की आर्थिक दशा सुधर गयी है और उनमें वर्ग-चेतना आ गयी है, इसलिए अब वहाँ से कभी किसी दंगे की खबर नहीं आयी।

इन दंगों में वैसे तो बड़े निराशाजनक समाचार सुनने में आते हैं, लेकिन कलकत्ते के दंगों में एक बात बहुत खुशी की सुनने में आयी। वह यह कि वहाँ दंगों में ट्रेड यूनियनों के मज़दूरों ने हिस्सा नहीं लिया और न ही वे परस्पर गुत्थमगुत्था ही हुए, वरन सभी हिन्दू-मुसलमान बड़े प्रेम से कारखानों आदि में उठते-बैठते और दंगे रोकने के भी यत्न करते रहे। यह इसलिए कि उनमें वर्ग-चेतना थी और वे अपने वर्गहित को अच्छी तरह पहचानते थे। वर्ग-चेतना का यही सुन्दर रास्ता है, जो साम्प्रदायिक दंगे रोक सकता है।

यह खुशी का समाचार हमारे कानों को मिला है कि भारत के नवयुवक अब वैसे धर्मों से जो परस्पर लड़ाना व घृणा करना सिखाते हैं, तंग आकर हाथ धो रहे हैं और उनमें इतना खुलापन आ गया है कि वे भारत के लोगों को धर्म की नजर से हिन्दू, मुसलमान या सिख-रूप में नहीं, वरन सभी को पहले इन्सान समझते हैं, फिर भारतवासी। भारत के युवकों में इन विचारों के पैदा होने से पता चलता है कि भारत का भविष्य सुनहला है और भारतवासियों को इन दंगों आदि को देखकर घबराना नहीं चाहिए, बल्कि तैयार-बर-तैयार हो यत्न करना चाहिए कि ऐसा वातावरण ही न बने, ताकि दंगे हों ही नहीं।

1914-15 के शहीदों ने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया था। वे समझते थे कि धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है, इसमें दूसरे का कोई दखल नहीं। न ही इसे राजनीति में घुसाना चाहिए, क्योंकि यह सरबत को मिलकर एक जगह काम नहीं करने देता। इसीलिए गदर पार्टी-जैसे आन्दोलन एकजुट व एकजान रहे, जिसमें सिख बढ़-चढ़कर फाँसियों पर चढ़े और हिन्दू-मुसलमान भी पीछे नहीं रहे।

इस समय कुछ भारतीय नेता भी मैदान में उतरे हैं, जो धर्म को राजनीति से अलग करना चाहते हैं। झगड़ा मिटाने का यह भी एक सुन्दर इलाज है और हम इसका समर्थन करते हैं।

यदि धर्म को अलग कर दिया जाये तो राजनीति पर हम सभी इकट्ठे हो सकते हैं। धर्मों में हम चाहे अलग-अलग ही रहें।

हमारा ख्याल है कि भारत के सच्चे हमदर्द हमारे बताये इलाज पर जरूर विचार करेंगे और भारत का इस समय जो आत्मघात हो रहा है, उससे हमें बचा लेंगे।

कविता

कचोटती स्वतंत्रता

नाज़िम हिक्मत

तुम बेचते हो अपनी आँखों का शऊर, अपने हाथों की दृष्टि
तुम बनाते हो लोइयाँ दुनिया भर की चीज़ों की
बिना एक कौर चखे
अपनी महान आज़ादी के साथ तुम खटते हो गैरों के लिए
जो तुम्हारी अम्मा को कलपाते रुलाते हैं, उन्हें
धन्ना सेठ बनाने की आज़ादी के साथ
तुम स्वतंत्र हो।

धरती पर गिरने के छिन ही वे सवार हो जाते हैं तुम्हारे सर पर
उनकी झूठ चक्कियाँ पीसती है लगातार तुम्हारी ज़िन्दगी
हथेलियों से कनपटियाँ दाबे, महान आज़ादी से बिसूरते हो तुम
अन्तःकरण की स्वतंत्रता के साथ
तुम स्वतंत्र हो।

तुम्हारा झूलता सर अलग हुआ जान पड़ता है गर्दन से
लटकती हैं बाहें आजू-बाजू
मटरगश्ती करते हो तुम अपनी महान आज़ादी में
बेरोज़गारों की स्वतंत्रता के साथ
तुम स्वतंत्र हो।

तुम प्यार करते हो देश को जिगरी दोस्त के समान
किसी रोज़, वे, उसे बेच देते हैं, शायद अमेरिका को
साथ में तुम्हें भी, तुम्हारी महान आज़ादी सम्मेत
हवाई अड्डा बनने की स्वतंत्रता के साथ
तुम स्वतंत्र हो।

वाल स्ट्रीट तुम्हारी गर्दन जकड़ती है, सत्यानाश हो उसके हाथों का
किसी दिन, वे तुम्हें भेज देते हैं कोरिया
अपनी महान आज़ादी से तुम भरते हो एक कब्र....
गुमनाम सैनिक हो जाने की स्वतंत्रता के साथ
तुम स्वतंत्र हो।

लोहे का फाटक नहीं, परदा नहीं परदे का, टाट तक की ओट नहीं
जरूरत ही क्या है तुम्हें स्वतंत्रता का वरण करने की
तुम स्वतंत्र हो।

उम्मीद है, आएगा वह दिन

(उपन्यास अंश)

• एमील ज़ोला

'उम्मीद है, आएगा वह दिन' को ज्यादातर आलोचक एमील ज़ोला की सर्वोत्कृष्ट रचना मानते हैं। यह खदान मज़दूरों की ज़िन्दगी के वर्णन के साथ-साथ मज़दूर वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच के सम्बन्धों का प्रामाणित चित्र उपस्थित करता है। साथ ही, यह खदान मज़दूरों की एक हड़ताल के दौरान और उसके बाद घटी घटनाओं का मूल्यांकन प्रकारान्तर से उस दौर के उन राजनीतिक आन्दोलनों के सन्दर्भ में भी करता है जो सर्वहारा वर्ग की समस्याओं के अलग-अलग समाधान तथा उनके अलग-अलग रास्ते प्रस्तुत कर रहे थे। ज़ोला द्वारा कोयला खदानों की इंसानों को लील जाने वाले राक्षस से तुलना और मज़दूरों के चरित्र-चित्रण के लिए पशुजगत और वनस्पति विज्ञान के बिम्बों का प्रयोग ऐसे उपन्यास की महाकाव्यात्मक सम्भावनाओं को उद्घाटित करने में सहायक बनते हैं जो अभिशाप और पुनरुद्धार के प्राचीन मिथक की आधुनिक सन्दर्भों में प्रतिकृति तैयार करता है।

इसके पहले के किसी भी उपन्यास में किसी औद्योगिक संघर्ष का इतना विस्तृत और प्रामाणिक चित्रण नहीं मिलता। यहाँ तक कि बीसवीं शताब्दी में भी ऐसे गिने-चुने उपन्यास ही देखने को मिलते हैं जो इस मायने में 'उम्मीद है, आएगा वह दिन' के आसपास ठहरते हों।

सभा प्लां-दे-दाम में रखी गई थी। वहाँ पिछले दिनों बड़ी संख्या में पेड़ काट डाले गए थे। सो, काफ़ी खुली जगह बन गई थी। हलकी-सी ढलान भी थी, जिसके चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे पेड़ थे। एकदम सीधे और बराबर तनों वाले 'बीच' पेड़ों के झुरमुट थे, जिनके सफेद-सफेद तनों पर लाइकेन वनस्पति के धब्बे-से दिखाई पड़ते थे। जिन विशाल पेड़ों को काटकर डाला गया था, वे अब भी वहाँ पड़े थे। बाईं ओर चिरी लकड़ी का टाल-सा लगा था। धुँधलका होने के साथ-साथ सर्दी भी बढ़ने लगी थी और नीचे गिरी सिवार और वनस्पतियाँ पैरों तले आकर चटचटाने लगती थीं। धरती पर तो एकदम अँधेरी रात थी, लेकिन ऊपर धुँधले आकाश में ऊँची टहनियों की काली छाया दिखाई पड़ती थी, जहाँ उभरता चन्द्रमा शीघ्र ही सितारों की रोशनी को मन्द कर देगा।

करीब तीन हज़ार खान मज़दूर इस खुली जगह पर आकर इकट्ठे हो गये थे क्या मर्द, क्या औरतें, क्या बच्चे। भीड़ उमड़ी पड़ती थी। लोग आते जा रहे थे और खाली जगह को भरते जा रहे थे और फिर पेड़ों के नीचे भी फैल जा रहे थे। तिस पर भी आनेवालों का ताँता लगा था। अन्धकार में डूबे मानव सिरों का समुद्र वहाँ तक ठाठें मार रहा था जहाँ तक झाड़ियाँ उगी थीं। हल्की-हल्की मरमराहट-सी सुनाई पड़ रही थी। लगता था, जैसे निस्तब्ध हिमानी वन-प्रदेश में झंझावात चल रहा हो।

एतियन ढलान की सबसे ऊँची जगह पर खड़ा था। उसके साथ खड़े थे रासनर और माहअ। तभी झगड़ा शुरू हो गया। बीच-बीच में उनकी बातें सुनाई पड़ जाती थीं। निकट खड़े लोग सुन रहे थे। एक तो लवाक था, जिसकी मुट्ठियाँ भिंची हुई थीं। दूसरा पियरों था, जो उनकी तरफ पीठ करके खड़ा था और इसलिए व्याकुल हो रहा था कि बीमारी का स्वाँग अब नहीं कर पाया। फिर बोनमोर्त और बूढ़ा मूक था, जो एक ठूँठ पर साथ-साथ बैठे थे और गहरी सोच में डूबे लगते थे। उनके पीछे मसखरी करनेवाले लोग खड़े थे जकारी, मूके और दूसरे लोग, जो सबकी खिल्ली उड़ाने के इरादे से ही आए थे।

इनके विपरीत, स्त्रियाँ एकदम गम्भीर बनी खड़ी थीं, मानो चर्च में आई हों। ला लवाक दबी जबान में गाली-गुफ़्तार कर रही थी। फिलोमेन खाँस रही थी, क्योंकि जाड़े के कारण साँस लेने में उसे तकलीफ होती थी। मूकेत ही ऐसी औरत थी जिसका चेहरा खिला हुआ था। वह प्रसन्न इस बात से थी कि ला ब्रूले अपनी बेटी को फटकारते हुए कह रही थी कि तू एकदम बेहूदा छोकरी है। कहती थी माँ को इसलिए कहीं भेज दिया था इसने ताकि पीछे बैठकर खुद सारा खरगोश चट करें। एकदम बेहया लड़की है, जो अपने मरद की कायरता के कारण मुटिया रही है! यालैं टाल के ऊपर चढ़ गया था। फिर लिडी को भी उसने खींचकर अपने साथ बैठा लिया और बेबेर को झिड़ककर कहा कि वह ऊपर क्यों नहीं आता। आकाश की पृष्ठभूमि में उनकी आकृतियाँ सबसे ऊपर नुमायाँ थीं।

वास्तव में, झगड़ा रासनर ने ही शुरू किया था। वह चाहता था कि संसदीय प्रणाली का अनुसरण करते हुए कमेटी चुनी जाए। बां-ज्वाइयो में हारने से वह तिलमिलाया हुआ था और इस फिराक में था कि किसी तरह बदला चुकाए। फिर डींग मार रहा था कि प्रतिनिधियों के ही नहीं, खान मज़दूरों के सामने जाकर खड़े होने की देर है, खोई प्रतिष्ठा वह पुनः प्राप्त कर लेगा। एतियन समझता था कि जंगल के बीच किसी कमेटी की बात सोचना निरी मूर्खता है। क्या ये लोग नहीं जानते कि जंगली जानवरों की तरह उनका पीछा किया जा रहा है और अब हालत ऐसी है कि उन्हें वहशियों की तरह ही आचरण करने को विवश होना पड़ेगा। और ऐसा करने के लिए इंक़लाबी तौर-तरीके अपनाने की आवश्यकता थी।

एतियन ने जब देखा कि यह बहस-मुबाहिसा तो खत्म होनेवाला नहीं, सो वह दौड़ा और धरती पर पड़े पेड़ के तने पर खड़ा हो गया और सबका ध्यान आकर्षित करने के लिए ऊँचे स्वर में बोला : 'कामरेडो! कामरेडो!'

रासनर ने प्रतिवाद किया, तो माहअ ने उसका मुँह बन्द कर दिया। भीड़ में जो बड़बड़ाहट-कुड़कुड़ाहट-सी हो रही थी, वह भी धीरे-धीरे थम गई।

एतियन गर्जन-तर्जन के साथ बोल रहा था : 'कामरेडो! उन लोगों ने हमारे बोलने पर पाबन्दी लगाई है, और हमारे पीछे पुलिस भी छोड़ रखी है, मानो हमने कोई अपराध किया हो। यही वजह है कि इस जगह आकर सभा करने के अलावा हमारे पास कोई चारा नहीं था। यहाँ हम आज़ाद हैं। यह हमारा अपना घर है। यहाँ हमारी जबान को कोई पकड़ नहीं सकता, जिस तरह कोई परिन्दों का या जानवरों का बोलना बन्द नहीं कर सकता।'

भीड़ ने चिल्ला-चिल्लाकर उसका समर्थन किया।

'हाँ, यह जंगल हमारा है। यहाँ हमें बोलने का हक... बोलो, बोलो।'

एक क्षण एतियन तने पर निश्चल-सा खड़ा देखता रहा। चन्द्रमा अभी बहुत नीचे था और चाँदनी सबसे ऊपर वाली टहनियों पर पड़ रही थी। अँधेरे में डूबी भीड़ धीरे-धीरे शान्त और स्थिर होती जा रही थी। एतियन भी एकदम छाया-सा लग रहा था देखकर ऐसे लगता था जैसे अन्धकार में कोई शलाका खड़ी हो।

एतियन ने बाँह उठाकर धीरे-धीरे बोलते हुए भाषण शुरू किया। लेकिन उसके स्वर में अब वह गर्जन-तर्जन नहीं था। उसने ऐसा सन्तुलित लहजा अपनाया, जैसा कि जनता का साधारण प्रतिनिधि सारी स्थिति की जानकारी देने के लिए बोलता है। सबसे पहले उसने वही बातें कहीं जिन पर पुलिस के मुखिया ने बां ज़्वाइयों में रोक लगाई थी। इसके बाद उसने हड़ताल का सारा इतिहास बताया और वैज्ञानिक शब्दावली की उधार ली गई शैली में अपनी बात समझाने की कोशिश की। मात्र तथ्य ही उसने बताए और तथ्यों के अलावा और कोई बात नहीं कही। पहले तो बोला कि वह हड़ताल के ख़िलाफ़ है, खान मज़दूर भी तो हड़ताल नहीं करना चाहते थे। मगर उन्हें हड़ताल करने को विवश होना पड़ा है, क्योंकि प्रबन्धकों ने बल्लियाँ-शहतीर लगाने की मजूरी अलग से देने की प्रणाली लागू कर दी है। फिर उसने प्रतिनिधियों की पहली मुलाकात के बारे में बताया जो मैनेजर के बँगले पर हुई थी, और प्रबन्धकों की बदनीयती की चर्चा की। फिर ऐसी ही दूसरी मुलाकात का जिक्र किया जिसमें उन्होंने दो सांटीम की रिआयत देने की बात कही थी, और यह रकम असल में वही थी जिसे उन्होंने मज़दूरों से छीनने की कोशिश की थी। यह था सारा किस्सा-कोताह।

इसके बाद उसने उस खर्च का हिसाब उनके सामने रखा जिस कारण इमरजेंसी फंड चुक गया था और यह भी बताया कि बाहर से जो धन आया, उसका उपयोग भी किस तरह किया गया, और फिर कुछ वाक्यों में इण्टरनेशनल यानी कि प्लूकार्ट और दूसरे लोगों का पक्ष लेते हुए बताया कि किस तरह वे दुनिया को फतह करने की लड़ाई लड़ रहे हैं और इस लड़ाई में आनेवाली कठिनाइयों के कारण वे क्योंकर यहाँ के मज़दूरों की ज्यादा मदद नहीं कर पा रहे हैं। इसीलिए हालात दिन-ब-दिन बिगड़ते जा रहे हैं कम्पनी हाजिरी की किताबें लौटा रही है और बेल्जियम से मज़दूरों को लाने की बात कहकर डरा रही है और इसके साथ-साथ उनके उन साथियों को भी धमकियाँ देने लगी हैं जो थोड़ा डगमगा रहे हैं। यही नहीं, कुछेक खान मज़दूरों को बहला-फुसलाकर उन्होंने काम पर आने के लिए राजी भी कर लिया है।

एतियन एक ही लहजे में बोलता जा रहा था, जैसे इन सारी अप्रिय बातों के बारे में उन्हें कायल करना चाहता हो। कहता था कि भूखों मरने की नौबत आ गई है और आशा का दामन छूटता जा रहा है, संघर्ष करते-करते हिम्मत पस्त होने लगी है। मगर फिर एकाएक अपनी आवाज़ बुलन्द करते हुए उसने संक्षेप में दूसरी बातें बताईं।

'कामरेडो! इन हालात में आप लोगों को आज यहाँ फैसला करना होगा। क्या हड़ताल जारी रखना चाहते हैं? अगर हाँ, तो कम्पनी को नीचा

(पेज 11 पर जारी)

उम्मीद है, आएगा वह दिन

(पेज 10 से आगे)

दिखाने के लिए क्या किया जाना चाहिए?'

तारों भरे आसमान के नीचे एकदम सन्नाटा छा गया। अन्धकार की चादर में अदृश्य भीड़ इन दहला देनेवाले शब्दों की मार से जैसे एकदम मौन और अवाक हो गई थी। उस वक्त, बस, एक ही आहट थी पेड़ों में से छनकर आती भीड़ की हताश आहें!

एतियन ने पुनः बोलना शुरू किया। अबकी बार उसका स्वर एकदम भिन्न था। ऐसे बोल रहा था, जैसे किसी एसोसिएशन का सेक्रेटरी नहीं, बल्कि फौज का कमाण्डर हो, कोई धर्मप्रचारक हो, जो सचाई का दिग्दर्शन कराने आया हो। कह रहा था क्या तुम लोग इतने कायर हो कि काम पर वापस जाना चाहते हो? क्या बेकार की महीने-भर से तकलीफें बरदाश्त करते आ रहे हो? क्या टाँगों में पूँछ दबाकर तुम लोग कोयला-खानों में चले जाओगे? क्या अपनी तकलीफों का सिलसिला फिर से शुरू करने को तैयार हो, जिन्हें जमाने से भोगते आ रहे हो? क्या यह बेहतर नहीं होगा कि इसी वक्त जान दे दें जिससे कामगारों को भूखों मारनेवाले पूँजीपतियों के अत्याचारों का अन्त हो? क्या वह वक्त नहीं आ गया कि भूख के आगे नासमझ लोगों की तरह घुटने टेकना बन्द करें? अगर इस वक्त घुटने टेकोगे, तो भुखमरी से ऐसे हालात फिर पैदा हो जाएँगे कि हलीम से हलीम आदमी भी फिर से बगावत करने के लिए मजबूर हो जाएगा...

और इस तरह एतियन ने शोषण की चक्की में पिसते खान मज़दूरों की तस्वीर पेश की। बोला कि जब भी होड़ में कीमतें घटानी पड़ जाती हैं, तो तबाही लानेवाले इस संकट की सारी मार किस तरह उन्हीं लोगों को झेलनी पड़ती है और ऐसे हालात पैदा हो जाते हैं कि भुखमरी की नौबत आ जाती है। न! बल्लियाँ-शहतीर लगाने के लिए मजूरी की नई प्रणाली हमें मंजूर नहीं इसकी ओट में कम्पनी बचत करना चाहती है। यह कोशिश है एक-एक मज़दूर की हर रोज़ एक घण्टे की मजूरी हड़प लेने की और इस बार तो इन लोगों ने हद ही कर दी है। अब वह दिन दूर नहीं जब दीन-दुखी लोग धीरज खो बैठेंगे और इंसाफ लेकर रहेंगे।

एतियन तनिक रुका। बाँहें पसारे देख रहा था। 'इंसाफ' शब्द कानों में पड़ते ही भीड़ में उत्तेजना फैल गई थी और लोग ज़ोर-ज़ोर से तालियाँ बजाने लगे थे और करतल-ध्वनि ऐसे गूँज रही थी, जैसे आँधी में सूखे पत्ते सरसराते हैं।

'इंसाफ!...! इंसाफ हो! इंसाफ हो!'

एतियन धीरे-धीरे जोश में आता जा रहा था। रासनर की तरह उसे कोई बात एकदम साफ-स्पष्ट और सहज तरीके से कहने का ढंग तो आता नहीं था। प्रायः उपयुक्त शब्द ही नहीं मिलते थे और वह अपने ही वाक्यों में उलझकर रह जाता था और सायास बोलने से सारी देह तन जाती थी। मगर इसका एक फायदा यह मिलता था कि हकलाते-लड़खड़ाते हुए उसे मज़दूरों के कठोर परिश्रम को अभिव्यक्त करनेवाले कुछ ऐसे सटीक रूपक सूझ जाते थे जो श्रोताओं के दिलों को गहराई तक छू लेते थे। फिर एक मज़दूर के हाव-भाव कोहनियों को पीछे ले जाना, भिंची हुई मुट्ठियों के साथ उन्हें आगे लाना, जबड़ों को इस तरह भींचना मानो काटने को तत्पर हो इन सबका मज़दूरों पर विलक्षण प्रभाव पड़ता। हरेक की जबान पर एक ही बात होती बहुत बड़ा आदमी तो नहीं है यह, लेकिन अपनी बात कहने का ढंग जानता है।

'वेतन गुलामी का ही एक नया डौल है,' वह थरथराते लहजे में बोलता जा रहा था। 'कोयला-खान पर मिल्कियत खान मज़दूर की होनी चाहिए, बिल्कुल उसी तरह, जिस तरह समुन्दर मछुआरे का होता है, उसी तरह जिस तरह जमीन की मिल्कियत किसान की होती है... मेरी बात आप लोग गौर से सुनें। कोयला-खान तुम लोगों की है, यानी उन सब लोगों की है जिन्होंने सौ साल से ज्यादा समय तक अपने खून से, अपने दुख-दर्द से इसकी कीमत अदा की है!'

और उसने पूरे दम-खम के साथ दुरूह किस्म के क़ानूनी प्रश्नों का हवाला देना शुरू किया, जिसका नतीजा यह हुआ कि कोयला-खानों से सम्बन्धित विशेष क़ानूनों की अन्तहीन श्रृंखला में बुरी तरह उलझता चला गया। जो चीज़ धरती के नीचे है, वह जनता की है। केवल एक कुत्सित विशेषाधिकार के तहत कम्पनियों को इजारेदारी मिली हुई है, और खास तौर से मोंसू के बारे में ऐसा हुआ, जहाँ रियायतों की तथाकथित वैधता उन समझौतों की बदौलत पेचीदा बनी जो बहुत पहले हेनो की प्राचीन पद्धति के अनुसार भूतपूर्व जागीरदारों के साथ किए गए थे। इसलिए अब, बस, करना यह है कि खान मज़दूरों को उस चीज़ को फिर से वापस पाना है जो असल में उनकी अपनी ही थी और यह कहते हुए एतियन ने बाँहें फैलाकर जंगल के पार सारे देहाती इलाके को घेरे में समेट लिया। उसी समय चन्द्रमा ऊँची शाखाओं को लाँघकर आया और एतियन चाँदनी में एकदम नहा गया। अब जब अँधेरे में खड़ी भीड़ ने उसे ज्योत्सना की उज्ज्वलता के बीच खुले हाथों धन-सम्पदा बाँटते हुए देखा, तो तुमुल करध्वनि से उसका अभिनन्दन किया।

'हाँ, बिल्कुल सही कहता है, बिल्कुल सही कहता है!'

इस स्थल पर एतियन ने अपना प्रिय विषय उठाया उत्पादन के उपकरणों पर सामूहिक नियंत्रण, और जब वह अपने इस सिद्धान्त को शब्दों में व्यक्त करने लगता था, तो इस तरह की अपनी अण्ड-बण्ड शब्दावली का प्रयोग करके एकदम उल्लसित हो उठता था। उसमें एक जबर्दस्त तब्दीली आ गई थी। जिस तरह नया मुल्ला ऊँची बाँग देता है, उसी तरह उसे यह कहने की झक सवार हुई थी कि वेतन-प्रणाली में सुधार करने की आवश्यकता है और उसने यह राजनीतिक सिद्धान्त प्रतिपादित करना शुरू किया था कि वेतन-प्रणाली को पूर्णतः समाप्त कर देना चाहिए। उसके समष्टिवाद ने जो बां ज़्वाइयो की सभा होने तक अमूर्त और लोकोपकारी था अब एक जटिल कार्यक्रम का रूप ले लिया था, जिसके प्रत्येक पक्ष की वह वैज्ञानिक विवेचना करने लगता था। पहले तो वह यह कल्पना किया करता था कि राज्य या राष्ट्र को नष्ट करके ही स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है। उसके बाद, जब सरकार पर जनता का नियंत्रण हो जाएगा, तभी सुधार-कार्य आरम्भ होगा : यानी प्राचीन कम्यून वाले जीवन का आविर्भाव होगा, ओछे और दमनकारी परिवार की जगह समतावादी और स्वतंत्र परिवार की स्थापना होगी, नागरिक, राजनीतिक और आर्थिक मामलों में पूर्ण समानता होगी और श्रम के उपकरणों का तथा श्रमजनित फल का अधिग्रहण करके वैयक्तिक स्वाधीनता सुनिश्चित की जाएगी, और अन्ततः निःशुल्क तकनीकी प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जाएगी जिसका सारा खर्च समाज वहन करेगा। इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पुराने भ्रष्ट समाज का आमूलचूल रूपान्तरण करना आवश्यक होगा।

एतियन ने विवाह-प्रथा तथा उत्तराधिकार की पद्धति पर भी आक्रमण किया और व्यक्तिगत धन-सम्पदा की सीमा भी निर्धारित की, और मृत शताब्दियों के अन्यायपूर्ण कीर्ति-स्तम्भों को भी ध्वस्त करना शुरू किया ये सब बातें उसने एक हाथ भाँज-भाँजकर कहीं। उसके हाव-भाव उस दराँती की तरह थे जो पकी फसल को काटती जाती है। फिर, दूसरे हाथ से उसने भावी मानवता का निर्माण करने की बात प्रतिपादित करनी शुरू की, सचाई और इंसाफ की ऐसी इमारत की तामीर की जो बीसवीं शताब्दी के आगमन के साथ खड़ी होगी। इस बौद्धिक विलास का प्रतिपादन करते-करते तर्क खण्ड-खण्ड हो जाता और एकनिष्ठ मतान्धता हावी होने लगती। ऐसे में उसके भीतर जो थोड़ी-बहुत संवेदनशीलता और सहज बुद्धि थी, वह तिरोहित हो जाती और इस नई दुनिया की प्राप्ति से सहज-सरल और कोई चीज़ उसे दिखाई न पड़ती : इसकी सारी योजना उसके मस्तिष्क में थी और उसके बारे में इस तरह बताने लगता कि यह एक ऐसा तंत्र है जिसकी स्थापना एक-दो घण्टों के भीतर ही वह कर सकता है, और इसके लिए आग और रक्त की शक्ल में जितनी भी कीमत चुकानी पड़ेगी, इसकी कोई चिन्ता नहीं है उसे।

'अब हमारी बारी है,' अन्ततः वह चिल्लाकर बोला। 'अब सत्ता और सम्पत्ति लेने की बारी हमारी है।'

सारा वन उसकी जय-जयकार करने लग गया। तब तक चाँद अपनी चाँदनी से उस सारे स्थल को नहला चुका था और मनुष्यों के सिरों का उमड़ता सागर एकदम साफ दिखाई पड़ने लगा था जो बड़े-बड़े धूसर पेड़ों के तनों के बीच झाड़-झंखाड़ की अस्पष्ट पंक्तिरेख तक ठाँठे मार रहा था। उस हिमानी आकाश तले उत्तेजित चेहरों का वह विशाल जनसमुह था जो धधकती आँखों से देख रहे थे, मुँह खुले थे उनके, एक-एक व्यक्ति जोश से उफन रहा था। भुखमरी के कगार पर पहुँचे स्त्रियों-पुरुषों-बालकों को खुला आमंत्रण दिया जा रहा था कि वे उस प्राचीन थाती को न्यायतः लूट लें जिससे उन्हें बेदखल किया गया है। अब तो उन्हें जाड़ा भी नहीं सता रहा था। एतियन के गर्म शब्दों ने उन्हें एकदम भीतर तक तपा दिया था। एक प्रकार की श्रद्धापूर्ण उत्प्रेरणा उन्हें धरती से उठाकर ऊपर ले गई थी। यह बिल्कुल वैसी ही आशावादिता थी जैसी कि शुरू-शुरू के ईसाइयों में हुआ करती थी, जो भावी न्यायपूर्ण शासन पद्धति के लिए पलकें बिछाए रखते थे। उसके अनेक वाक्य इतने अस्पष्ट थे कि उनके पल्ले पड़ ही नहीं सकते थे। तकनीकी और अमूर्त तर्क-वितर्क भी उनकी समझ में नहीं आ सकता था। मगर प्रतीत होता था इस दुर्बोधता और अमूर्तता ने उनके भीतर और अधिक आशाओं का संचार कर दिया था और वे उस दैदीप्यमान, चकाचौंधपूर्ण भविष्य की ओर आस लगाए देखने लगे थे। यह कैसा स्पप्न था! वे लोग मालिक बनेंगे, सारे कष्ट, दुख-दर्द मिट जाएँगे और अन्ततः सारी धन-सम्पदा पर उन्हीं का स्वत्व हो जाएगा।

'यह सही बात है। अब हमारी बारी है!... शोषण करने वाले... मुर्दाबाद!

स्त्रियाँ तो एकदम उन्मत्त हो उठी थीं ला माहूद भूख की घुमेरी के कारण आपा खो बैठी थी। ला लवाक चिल्ला रही थी। बूढ़ी ला ब्रूले आवेश में आकर अपनी डायन जैसी बाँहें भाँज रही थी। फ़िलोमेन को खाँसी का दौरा पड़ गया था और मूकेत इतनी उत्साहित थी कि एतियन की वाहवाही करते हुए जैसे बिछती चली जा रही थी।

पुरुषों में माहूअ तो एतियन पर एकदम न्योछावर हो गया था। वह काँपते-थरथराते पियरों तथा बकते-झकते लवाक के मध्य खड़ा था और आवेश में आकर चिल्ला रहा था। ज़कारी और मूके जैसे मसख़रे आए तो थे खिल्ली उड़ाने, मगर लज्जित और चकित थे कि कोई आदमी एक घूँट पिए बिना भी इतनी देर तक निरन्तर बोलने की सामर्थ्य रखता है। लकड़ियों के टाल पर चढ़कर बैठा यालें चीखते हुए बेबेर और लिडी को उकसा रहा था और इसके साथ 'पोलैण्ड' खरगोश वाली टोकरी भी झुलाता जा रहा था।

कोलाहल फिर शुरू हो गया था और एतियन इस लोकप्रियता का पान करते हुए धुत्त था। उसके मुख से निकले एक शब्द पर जब तीन हजार छातियों के दिल जोर-जोर से धड़कने लगे थे, तो उसे अपनी शक्ति-सामर्थ्य का भी डंका बजता सुनाई पड़ने लगा था। यदि सूवारीन ने आने की कृपा की होती, और उसके विचारों को वह अंगीकार करता, तो अवश्य ही उसकी कद्र करता और अराजकतावादी सिद्धान्त में अपने शिष्य की प्रगति देख उसे इत्मीनान होता और उसके इस सारे कार्यक्रम से प्रशिक्षण के मुद्दे को छोड़कर, जो कि भावुकतापूर्ण मूर्खता का चिह्न था सन्तुष्ट ही होता, क्योंकि स्वस्थ अज्ञान एक ऐसा कुण्ड है जिसमें मनुष्य का जीवन पुनः परखा जाता है। जहाँ तक रासनर का सम्बन्ध था, वह हिकारत और झुँझलाहट से कन्धे उचका रहा था।

'मुझे बोलने दे!' उसने चिल्लाकर एतियन से कहा।

एतियन पेड़ के तने से कूद पड़ा।

'जा, बोल, अगर तू बोलना ही चाहता है देखते हैं, कौन तेरी बात सुनता है!'

रासनर जाकर उसकी जगह पर खड़ा हो गया और लोगों को चुप कराने का जतन करने लगा। लेकिन कोलाहल थमा नहीं। भीड़ में लोग उसका नाम ले-लेकर चिल्ला रहे थे। पहले निकट के उन लोगों ने उसे लक्ष्य किया जो उसे जानते-पहचानते थे। फिर दूर के लोगों ने उसे देखा, जो पेड़ों के नीचे मँडरा रहे थे। लेकिन कोई भी उसकी बात सुनने को तैयार नहीं था। इस शख़्स का पतन हो चुका था और उसे देखते ही वे लोग भड़क उठे थे जो कभी उसके मुरीद थे। जो लोग उसके भाषा-कौशल से, उसकी सरल-सहज वाक्पटुता से खिंचे चले आते थे, मतलब कि उसकी हर बात पर फ़िदा थे, अब वही लोग अब ऐसे बिदक रहे थे उससे, जैसे उस शीरगरम चाय को देखकर मुँह बिचकाते हैं जो कायरों का ही पान हो सकती है। इस सारे कोलाहल के बीच उसने व्यर्थ ही बोलने की कोशिश की। वह चाहता तो यह था कि एक बार फिर वैसा ही भाषण दे और उन्हें बताए कि कानूनों के सहारे दुनिया को बदलना कतई नामुमकिन है और समाज के क्रमिक विकास के लिए पर्याप्त समय देना अनिवार्य है। यह सुनते ही सब लगे उसकी हँसी उड़ाने। बां ज़्वाइयों में उसने पराजय का मुँह देखा था। यहाँ भी उसे मुँह की खानी पड़ी जिसका कोई निस्तार नहीं था। नतीजा यह हुआ कि लोगों ने उस पर जमी हुई काई उठा-उठाकर मारनी शुरू की। एक स्त्री तो तीखी आवाज में चिल्लाकर बोली : 'वतन के दुश्मन... मुर्दाबाद!'

वह उन्हें समझाने की भरसक कोशिश कर रहा था देखिए, जैसे करघा बुनकर का होता है, वैसे कोयला-खान मज़दूर की कभी नहीं हो सकती। और उसने यह माँग की कि मुनाफ़ा बाँटने के लिए पद्धति लागू की जानी चाहिए। बोला कि उसका लाभ यह होगा कि कोयला-खान में मज़दूर का अन्तर्निहित स्वार्थ हो जाएगा, मानो वह भी परिवार का एक सदस्य है।

'वतन के दुश्मन... मुर्दाबाद...' हजारों लोगों ने चिल्ला-चिल्लाकर कहना शुरू किया, और फिर पथराव भी होने लगा।

●

झूठा, बेहया, बेईमान, जंगजू जार्ज बुश!

अपने साम्राज्यवादी मंसूबों को पूरा करने के लिए अमेरिकी हुक्मरान किस तरह सफेद झूठों का सहारा लेते हैं, इराक के बाद और गन्दा नमूना ईरान के मसले पर सामने आया है। खुद अमेरिकी खुफिया विभागों की एक ताज़ा रिपोर्ट में यह बात सामने आयी है कि ईरान में वर्ष 2003 के बाद से कोई नाभिकीय हथियार कार्यक्रम नहीं चल रहा है। रिपोर्ट सामने आने के बाद जार्ज बुश और उसकी जंगजू मण्डली के पैरों तले वह जमीन ही खिसक गयी है जिस पर खड़े होकर पिछले दो सालों से वह ईरान को धमकाता चला आ रहा था।

बीते तीन दिसम्बर को अमेरिका के राष्ट्रीय खुफिया आकलन ने यह रिपोर्ट जारी की। रिपोर्ट के निष्कर्ष अमेरिका की सोलह खुफिया एजेंसियों की खोजबीन पर आधारित हैं। रिपोर्ट जारी होने के बाद अमेरिकी शासक वर्गों के बीच जो थुक्का-फजीहत मची है उससे यह भी जाहिर हो गया है कि बुश को रिपोर्ट के नतीजों की जानकारी अगस्त 2007 में ही हो गयी थी। इसके बावजूद वह बेहयाई के साथ अभी हाल तक ईरान पर हमले की धमकियाँ देता रहा था। हाल ही में अमेरिकी यात्रा पर आये फ्रांसीसी राष्ट्रपति निकोलस सरकोज़ी के साथ एक साझा प्रेस कांफ्रेस में भी यह कहा गया था कि ईरान के नाभिकीय हथियार कार्यक्रम को रोकने के लिए दोनों देश मिलकर काम करेंगे।

ह्वाइट हाउस के प्रवक्ता ने भी इस बात की पुष्टि की है कि जार्ज बुश को अगस्त 2007 में ही बता दिया गया था कि ईरान में नाभिकीय हथियार कार्यक्रम नहीं चल रहा है। इसके बावजूद इस मक्कार ने जानबूझकर इस तथ्य को छुपाते हुए 28 अगस्त'07 को जारी बयान में ईरान को हड़काया था कि अगर उसने नाभिकीय हथियार कार्यक्रम बन्द नहीं किया तो "नाभिकीय महाविनाश" का सामना करने के लिये तैयार रहना चाहिए। अमेरिकी मीडिया में यहाँ तक रिपोर्टें आयी हैं कि बुश को अब से नौ महीने पूर्व ही इस खुफिया जानकारी के बारे में पता चल गया था। नौ महीने पहले बुश प्रशासन को यह जानकारी ईरान के एक पूर्व रक्षा उपमंत्री अली रज़ा असगरी के ज़रिये मिली थी जो बारह महीने पहले अचानक रहस्यमय ढंग से तुर्की से लापता हो गये थे। इस बारे में आशंकाएँ व्यक्त की जा रही हैं कि असगरी या तो खुद अमेरिकी पाले में चले गये हैं या उनका अमेरिकियों द्वारा अपहरण कर लिया गया है।

इस रिपोर्ट के आने के बाद अमेरिकी शासक वर्गों के भीतर जो हलचल मची है उसका अनुमान मीडिया की रिपोर्टों से पता चलता है। मीडिया सीधे-सीधे बुश को "बेईमान", "झूठा" और "गुमराह करने वाला" बता रहा है। लेकिन बुश की हेकड़ी और नंगई फिर भी कम नहीं हुई है। वह बिल्कुल 'नंगा राजा' की तरह बयान दिये जा रहा है कि "ईरान अब भी खतरनाक मुल्क" बना हुआ है। खुफिया रिपोर्ट को एक "बड़ा रहस्योद्घाटन" बताते हुए वह एक जुबान से यह कह रहा है कि असैनिक नाभिकीय

कार्यक्रम को आगे बढ़ाना ईरान का सम्प्रभु अधिकार है तो वहीं दूसरी जुबान से ईरान द्वारा लुक-छिपकर नाभिकीय कार्यक्रम आगे बढ़ाने की आशंकाएँ भी जता रहा है। दरअसल यह फरेबी पिछले दो वर्षों से ईरान के ख़िलाफ़ जंग का माहौल बनाने की नीति को हवाई आशंकाओं के सहारे अब भी जायज ठहराने की कोशिश कर रहा है।

ताजा अमेरिकी खुफिया रिपोर्ट आने के बाद अमेरिका के साम्राज्यवादी प्रतिद्वन्द्वी फ्रांस, जर्मनी और रूस अब अपनी कूटनीतिक बढ़त बनाने में जुट गये हैं। सभी एक सुर से कह रहे हैं कि अब वे संयुक्त राष्ट्र में ईरान के ख़िलाफ़ किसी नये प्रतिबन्ध के पक्ष में वोट नहीं देंगे। रूस सहित समूचे यूरोपीय साम्राज्यवादी खाड़ी क्षेत्र में एकक्षत्र अमेरिकी वर्चस्व को पहले भी पूरे मन से नहीं स्वीकार करते थे लेकिन अब तक अमेरिकी दबाव में वे संयुक्त राष्ट्र संघ में ईरान के ख़िलाफ़ खड़े हो जाते थे। अमेरिकी साम्राज्यवादियों का अपने बिरादरों पर दबाव का आलम यह था कि अक्टूबर 2003 और नवम्बर 2004 में फ्रांस, जर्मनी और ब्रिटेन की साम्राज्यवादी तिकड़ी ने ईरान के साथ सहयोग करने का जो समझौता किया था उससे भी वे पीछे हट गये थे। इन समझौतों में खाड़ी में शान्ति और स्थिरता कायम करने के नाम पर ईरान के शान्तिपूर्ण नाभिकीय कार्यक्रम में सहयोग करने की बात कही गयी थी। खुफिया रिपोर्ट से बुश की जो भद पिटी है उसके बाद अब फिर से यूरोपीय साम्राज्यवादी खाड़ी क्षेत्र में अपने मंसूबों को आगे बढ़ाने के लिए कसमसाने लगे हैं।

ताजा रहयोद्घाटन से सबसे ज्यादा धक्का अमेरिकी उपराष्ट्रपति डिक चेनी को लगा है क्योंकि ईरान के ख़िलाफ़ जल्द से जल्द जंग शुरू करने के लिए सबसे ज्यादा उतावलापन वही दिखा रहा था। इसका कारण उसके खुद के आर्थिक हित हैं। वैसे तो समूचा बुश प्रशासन ही खाड़ी के तेल में डूबा है लेकिन डिक चेनी खुद कई तेल कम्पनियों के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स का सदस्य है जो ईरान में बड़े-बड़े ठेके लेने को लालायित है।

अमेरिकी खुफिया रिपोर्ट ने जो सच्चाई उजागर की है वह अमेरिकी साम्राज्यवादियों के झूठ और मक्करी की कोई अकेली मिसाल नहीं है। इराक पर हमला भी झूठ की बुनियाद पर ही किया गया था। लाखों इराकी लोगों के संहार के बाद वहाँ भी यही सच्चाई सामने आयी थी कि सद्दाम हुसैन की हुकूमत के पास व्यापक जनसंहार के रासायनिक हथियार नहीं मौजूद थे जिसके बहाने उस पर हमला किया गया था। खाड़ी क्षेत्र पर अपना दबदबा बनाये रखने और उसकी अकूत तेल सम्पदा पर अपना कब्जा जमाने के लिए ही इराक पर हमला किया गया था। इराक के बाद ईरान इस क्षेत्र में उसके मंसूबों की राह की बड़ी रुकावट है इसीलिए उस पर हमला करने के लिए नाभिकीय हथियार कार्यक्रम को बहाना बनाया जा रहा था जिसका भण्डाफोड़ हो गया।

यह मानना भूल होगी कि अमेरिकी खुफिया एजेंसियों ने सच्चाई के प्रति अपनी निष्ठा के कारण यह रिपोर्ट जारी की है। दरअसल यह अमेरिकी शासक वर्गों के भीतर मौजूद फाँक का नतीजा है। इसमें अमेरिकी तेल कम्पनियों की आपसी होड़ की अहम भूमिका है। अमेरिका में राष्ट्रपति चुनावों की प्रक्रिया भी शुरू हो चुकी है। खुफिया रिपोर्ट को इसी पृष्ठभूमि में समझा जाना चाहिए।

अमेरिकी शासक वर्गों के बीच की इस दरार ने बुश और उसकी जंगजू मण्डली के मंसूबों को झटका देने के साथ ही पश्चिम एशिया में उसके दुलारे चोबदार और लठैत की भूमिका निभाने वाले इस्रायल के मंसूबों को करारा झटका दिया है। इस्राइली हुक्मरान भी ईरान पर हमला करने को बेताब थे क्योंकि इराक के बाद उनके मंसूबों को ईरान ही चुनौती दे रहा था।

● योगेश पन्त

पापात्मा का प्रायश्चित या साफगोई के पीछे छिपी धूर्तता

पी. चिदम्बरम जब वित्तमंत्री की कुर्सी छोड़कर किसी बौद्धिक जमात के बीच तक़रीर कर रहे होते हैं तो उनकी पापात्मा प्रायश्चित करने के लिए तड़प उठती है। अभी पिछले दिनों चेन्नई में स्वतंत्रता की हीरक जयन्ती पर आयोजित एक व्याख्यान-माला में उन्होंने काफ़ी फलसफाने अन्दाज में व्याख्यान दिया और प्रबुद्धजनों की तालियाँ और वाहवाही बटोरी।

मद्रास हाईकोर्ट द्वारा आयोजित इस व्याख्यानमाला में उन्होंने फरमाया कि भारत की मौजूदा 8.6 फीसदी विकास दर की चमक-दमक के नीचे "हम पायेंगे कि अर्थव्यवस्था के सभी पक्षों में जाति व्यवस्था का पुराना पदसोपान क्रम जस-का-तस बना हुआ है।" उन्होंने कहा कि अगर हम चिकित्सा क्षेत्र से लेकर क़ानून के क्षेत्र से जुड़े पेशों में दलित, महिलाओं, आदिवासियों और मुसलमानों के अनुपात की कसौटी पर कसें तो हमारा विकास सभी सामाजिक तबकों को लेकर चलने वाला नहीं कहलायेगा। औसत विकास दर की सच्चाई भी यह है कि देश के किसी हिस्से में यह 10-12 प्रतिशत है तो किसी हिस्से में बमुश्किल चार प्रतिशत।

प्रबुद्ध जनों की सभा में मानवीय करुणा की रसधार उड़ेलते हुए चिदम्बरम ढेर सारे तथ्य और आँकड़े पेश करते रहे जो देश में शिक्षा, चिकित्सा और आम लोगों की ज़िन्दगी को छूने वाले सामाजिक क्षेत्रों से जुड़े हुए थे। जैसे उन्होंने इसका जिक्र किया कि आज भी हमारे देश में एक करोड़ से अधिक बच्चे स्कूलों में नाम तक नहीं लिखा पाते। उन्होंने आगे कहा कि हमारी शिक्षा व्यवस्था की एक परेशान करने वाली चीज़ यह है कि पचास प्रतिशत बच्चे कक्षा पाँच के बाद पढ़ाई आगे जारी नहीं रख पाते और बारहवीं के बाद केवल नौ प्रतिशत छात्र उच्च शिक्षा संस्थानों में दाखिला ले पाते हैं जबकि हमने लक्ष्य 15 प्रतिशत का निर्धारित किया है। इस कम लक्ष्य पर भी उन्होंने अफ़सोस जाहिर किया क्योंकि दुनिया का औसत 45 प्रतिशत है।

इसके बाद विद्वान वित्तमंत्री ने राजकाज के संचालन से जुड़ी कुछ अन्य पीड़ाओं को भी जाहिर किया। कहा कि विभिन्न परियोजनाओं के संचालन में खुलेपन (पारदर्शिता) और जवाबदेही की कमी के कारण संसाधनों की भारी बर्बादी होती है। 301 परियोजनाओं के एक अध्ययन का हवाला देते हुए उन्होंने कहा कि इन कमियों के कारण इनका खर्च 49,867 करोड़ रुपये बढ़ गया। चूँकि बौद्धिक लोगों की सभा में वह बोल रहे थे इसलिए उन्होंने सीधे-सीधे भ्रष्टाचार या अफसरों-नेताओं द्वारा सार्वजनिक धन की लूट जैसी शब्दावली का सहारा नहीं लिया। "परियोजनाओं के गैरजरूरी बढ़ गये खर्चे," "संसाधनों की बर्बादी" जैसी शब्दावलियों से भ्रष्टाचार थोड़ा गरिमामय हो जाता है।

वित्तमंत्री के पूरे व्याख्यान के दौरान सभा-कक्ष में एक सर्द खामोशी छायी रही जिससे चिदम्बरम धारा प्रवाह बोलते रहे। लोग छींकते और जम्हाई भी लेते थे तो सभ्य-सम्भ्रान्त ढंग से, मुँह पर रूमाल रखकर, इसलिए चिदम्बरम का ध्यान भंग नहीं हुआ। व्याख्यान के बाद भी विद्वज्जनों की इस सभा में एक ने भी उनसे यह नहीं पूछा कि आखिर इन सब हालात के लिए जिम्मेदार कौन है। 1990 के पहले तक के हालात के लिए तो चलिए चिदम्बरम खुद पहले भी कई बार 'बन्द अर्थव्यवस्था' या नेहरूकालीन मिश्रित अर्थव्यवस्था को दोषी ठहरा चुके हैं। लेकिन पिछले 17 सालों से तो देश उन्हीं आर्थिक नीतियों पर चल रहा है जिसे उन्होंने ही मनमोहन सिंह के साथ मिलकर बनाया था। क्या अब चिदम्बरम उन नीतियों पर पुनर्विचार कर रहे हैं? या यह कहना चाहते हैं कि इन नीतियों के लागू होने की रफ्तार और बढ़नी चाहिए?

इस मसले पर खुद चिदम्बरम ने हालाँकि बहुत साफ-साफ कोई बात नहीं कही लेकिन कम से कम पुनर्विचार की मुद्रा में तो वे नहीं ही नजर आये। बस यही बात ज्यादा मुखर हुई कि उनकी पापात्मा थोड़ा प्रायश्चित कर आत्मा के बोझ को थोड़ा हल्का कर लेना चाहती है क्योंकि जो हल्का सा संकेत मिला उसके अनुसार चिदम्बरम अपना रास्ता नहीं छोड़ने वाले। आइये देखें वह क्या संकेत देते है।

बेहद दार्शनिक अन्दाज में उन्होंने कहा कि आगे बढ़ी हुई अर्थव्यवस्थाओं की सफलताओं का कारण यह है कि उन्होंने समाज की बहुलवादी संरचना को आगे बढ़ाया। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि तकनोलाजी और ज्ञान की क्षमता के अलावा मुक्त व्यापार और निजी पूँजी के प्रवाह साथ चलने वाले बहुलवादी समाज ही 21वीं सदी की निर्धारक शक्तियाँ बनेंगे। चिदम्बरम किसी ऐसे समाज की कल्पना सपने में भी नहीं कर सकते जो मुक्त व्यापार और निजी पूंजी के प्रवाह के साथ न चल सके। इस पर सभा में किसी ने उनसे यह नहीं पूछा कि पिछले 17 सालों से, जब से उनके द्वारा तैयार की गयी नयी आर्थिक नीतियाँ लागू होनी शुरू हुई हैं, मुक्त व्यापार और निजी पूँजी के बेरोकटोक प्रवाह ने कौन सा चमत्कार कर दिया है। इन नीतियों के "समावेशी" न होने पर तो आप स्वयं ही विलाप कर रहे हैं।

जाहिर है चिदम्बरम अपनी राह नहीं बदलने वाले। अलबत्ता, आने वाले नये बजट में विद्वानों की सभा में प्रकट की गयी "मानवीय चिन्ताओं" की छाप थोड़ी इसलिए दिख सकती है क्योंकि यह चुनावी साल है। कोई अगर यह नतीजा निकाले कि चिदम्बरम साहब की "मानवीय चिन्ताएँ" चुनावी चिन्ताएँ थीं तो ग़लत नहीं होगा। वैसे, इस पर भी अगर कोई सवाल उठाये कि यह 'पापात्मा का प्रायश्चित था' या साफगोई के पीछे छिपी मक्कारी थी तो बेजा नहीं होगा।

● आनन्द देव

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ। सम्पादक : डा. दूधनाथ, सुखविन्दर ● सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 ● सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ